

(१)
इश्क बनारसिया

१.
तू घुल जाती है मुझमें ऐसे
जैसे घुल जाता है मीठा पान कोई
ऐसा लाल रंग अनमोल है
इसका मिलता नहीं दाम कोई।

२.
हाथ पकड़कर गंगा तट पर
घंटों बैठा करते थे!
एक तू होता था
एक मैं होती थी
होती सुबह सुहानी थी!
कितनी निश्छल तेरी मेरी
शुरू हुई प्रेम कहानी थी!

प्रेम कोरे कागज़ का एक कलम से

३.
शिव नगरी काशी का
अंदाज़ बड़ा निराला है,
हर गली हर कूचे में गूंजता
बस एक ही नारा है,
सुख दुःख को परिभाषित करते
पुकार कर शिव को हर बार,
हर हर महादेव शिव शंभू
हर घर में तेरा वास

४.
सुबह सुबह धूप पकड़ने
चला सन्यासी घाट किनारे
सूरज से नज़ारे मिलाता
उतारता अंतर्मन में ये सारे नज़ारे
मोह माया त्याग दिया सब
काशी संग जोग लगाके

५.
बनारस के अस्सी घाट सी तू

तुम्हें देखता हूँ तो खो जाता हूँ तुझमें

६.

ऐ बनारस!

मुझे बस इतना बता दे
कि मुझमें तू है कि नहीं...

ऐ बनारस!

तेरी जुस्तजू सदियों से है,
कि तू ज़िंदा रहे मुझमें
मेरी आखिरी साँसों तक,

ऐ बनारस!

तेरी खुशबू फूलों सी है,
तू बिखर जाय मुझमें
समा जाय मेरी रुह में,

साँस लूँ तो

खुशबू तेरी ही आर,

ऐ बनारस!

जब आखिरी साँस मैं लूँ

तेरी मिट्टी

मुझसे लिपट जाय....

७.

००

ऐ बनारस!

मुझे बस इतना बता दे
कि मुझमें तू है कि नहीं...

ऐ बनारस!

तेरी जुस्तजू सदियों से है,
कि तू ज़िंदा रहे मुझमें
मेरी आखिरी साँसों तक,

ऐ बनारस!

तेरी खुशबू फूलों सी है,
तू बिखर जाय मुझमें
समा जाय मेरी रुह में,

साँस लूँ तो

खुशबू तेरी ही आर,

ऐ बनारस!

जब आखिरी साँस मैं लूँ

तेरी मिट्टी

मुझसे लिपट जाये....

गंगा तू समा लेना मुझको खुद में

बाद मरने के

ये रुह बनारस हो जाये..

००

८.

टेढ़ी-मेढ़ी गालियों का
सुलझा-सुलझा सा मन!
मिठास भरपूर यहाँ पर
मस्ती में डूबा है ये हरदम!
मेरा इश्क बनारस है!
मुझमें बनारस है!
मैं हूँ बनारस से!
बनारस है मेरा तन मन!

९.

बहुत सुकून है
रे बनारस!
तेरी चाँहों में,
सक उम्र गुज़र गई
सक उम्र गुज़र जासगी,
पहलू में तेरे
मेरी हस्ती निखर जासगी।

१०.

तुम लिखती अच्छा हो
पर लिखावट अच्छी नहीं...

सुनो

तुम बनारस सी हो
सबको रास नहीं आती!

११.

माँ! (माँ गंगा)
कुछ कुछ तुझ सी हूँ मैं,
ऊपर से शांत बहुत
भीतर हलचल मुझमें,

१२.

हर शख्स यहाँ
मुरलीधर है,
हर शख्स यहाँ
माधव है,
सब अपनी ही धुन में
मस्त मगन..
जिय रजा
इ बनारस है!

१३.

सक बार फिर

चाय के रंग में घुल जाते हैं!
इस बार बनारस की गलियों में
चाय पीने जाते हैं!

१४.

गली-गली नटनागर बसता
बजती मुरली की धुन,
हर हर महादेव!
जय श्री कृष्ण!
पग-पग पर तू सुन,

१५.

जन्म लिया बनारस में
मृत्यु की चाह भी
वही तक जाती है,
मणिकर्णिका की ज्वाला
पल पल मुझे बुलाती है,
मेरी राख को तुम
गंगा में यूँ ना बहाना...
महादेव के चरणों में
मुझको छोड़ आना...
धूल बन शिव शंकर के

तन से लिपटना चाहती हूँ
बाद मरने के एक बार
बनारस बनना चाहती हूँ

१६.

घाटों पर है
चहल-पहल बहुत
कितने सुंदर नज़ारे हैं,
नज़र ना लगे
इन नज़ारों किसी की
ये सोच सुबह शाम
माँ (गंगा) सबकी नज़र उतारे है,

१७.

तुम्हें नापने की चाहत में
इस ओर से उस ओर जाना
सुखद यात्रा थी मेरी...
माँ!
मगर
आसान ना होती ये यात्रा
थक जाते पाँव मेरे,
छाले जो पड़ते

उस पीड़ा से कौन उबारता!

माँ...

तुमने अपने अंक में

न लिया होता तो...

तो

सम्भव नहीं थी ये यात्रा

गंगा पार जाना

इतना भी आसान नहीं...

उसके लिए करने पड़ते हैं तप

माँ के हृदय बनाना होता है

अपना स्थान,

और जब बसा लेती है

अपने हृदय में...

वो लाड लड़ाती है

अपने बच्चों से...

और अपने अंक में ले

ले जाती है उस पार रेत पर...

१८.

खूबसूरत सा

इश्क मेरा

रुक बनारस

रुक सांवरा मेरा

१९.

सुकून की तलाश में

किधर जाऊ...

से बनारस!

तेरे पहलू में

हम समा जाऊ...

२०.

नुक्कड़ पर बैठा चाय वाला

जाने कौन सी चाय बनाता है,

मेला लगा रहता यहाँ पर

चर्चा पर सबको बिठाता है,

बिना गिलौड़ी किस

कोई रह कहाँ पाता है,

सेसे ही थोड़ी न कोई

बनारसी कहा जाता है।

२१.

गुरु बड़ा चउचक रंग है

देखो हर गलियारे का,
 इ रजा बनारस है!
 मिजाज़ अलग हर बनारसी का,
 अड़भंगी है
 फक्कड़ है
 अपने आप में मस्त मलंग,
 मिलती नहीं
 चौड़ी सड़कें इतनी..
 जितनी मिलती यहाँ गलियाँ तंग,
 मडुवाड़ीह का धुआं भी
 देखो..
 वरुणा तक जाता है,
 राजघाट पुल देखो ना
 कैसे तब मुस्काता है,
 अस्सी की छटा अनोखी
 तो कम कहाँ शिवाला है,
 दशाश्वमेध घाट से मिलने
 यूँ ही तो नहीं कोई आता है,
 माँ संकटा की आरती से
 जन-जन यहाँ जी जाता है,
 हर हर महादेव के उद्घोष से

ऐसे ही तो नहीं
 शहर गूँज जाता है,
 गुरु बड़ा चउचक रंग है
 देखो!
 अपनी शिव नगरी काशी का..
 भंग के नशे में मस्त मलंग है
 शिव संग हर जन काशी का!

२२.

हो जाना चाहती हूँ बुद्ध
 पर सम्भव नहीं!
 मैं स्त्री हूँ!
 त्याग मेरी प्रकृति है,
 पर अपनों का त्याग..
 मेरे लिए सम्भव नहीं!
 ये बनारस!
 तुमने मोह सिखाया है,
 मोक्ष भी
 तुम ही देना..

२३.

मुझी में कैद कर लूँ

मैं सपने अपने...
पुरवा भर इश्क बनारस
होंठो से लगा लूँ अपने...

२४.

है हवाओं में जो इश्क
है फ़िज़ाओं में जो इश्क
मुझे देखनी नहीं पड़ती तरिक्तियां
कि शहर कौन सा है...

२५.

कई लोगों तक
पहुँचते नहीं ख़्वाब बनारस के...
मैं सोचती हूँ उन्हें जीने की कला
सीखनी होगी शायद...

२६.

मन
मन
ख़्वाहिशों का
सक पुलिंदा ही तो है
जो...

हर आहट में
तुझको ही सुनता है,
तू राजघाट के पुल सा है
हरपल धड़कता है।

मन
चाहता है बुन लेना
उन ख़्वाबों को
जिसमें तस्वीर
सिर्फ तुम्हारी हो,
तुम प्रिय हो उसे
ठीक वैसे ही
जैसे दशाश्वमेध की
गंगा आरती उसे प्रिय है।

मन
इतनी सी ही तो
रखता है चाहत,
जब वो उदास हो
तुम आकर कहीं से
गले लगा लो उसे,
तुम वरुणा और

वो अस्सी हो जाए,
उसे वाराणसी हो जाने की
चाहत है।

मन
तोड़ देने चाहता है
सारी सीमाएं
क्योंकि
सीमा के उस पार
तुम रहते हो,
क्योंकि उसे घाट ही नहीं
गंगा के उस पार के
रेत भी लुभाते हैं।

मन
यूँ तो कुछ भी
चाहता नहीं...
फिर भी
चाहता है कि
मंदिर की घंटियों से
उसकी हर सुबह
सजी रहे....

वो आज भी
बनारस की गलियों में
भटकता है।

मन
उड़ना चाहता है
खुले आकाश में,
वो परिंदों से
बतियाना चाहता है,
क्योंकि वो जानता है
परिंदे उसकी बातें
किसी को नहीं बतायेंगे,
वो जानते हैं
राज़ रखना बातों को,
क्योंकि उनका मन
माँ गंगा सा पवित्र है।

मन
बुद्ध बन
सारनाथ के किसी वृक्ष के नीचे
समाधि लगाना चाहता है,
ज़मीं पर चलना चाहता है

नंगे पांव...
वो सोख लेना चाहता है
मिट्टी की नमी,
उसके सूखे तन को
राहतों की तलाश है।

मन
हो जाना चाहता है
आवारा सक भँवरा,
वो चूमना चाहता है
फूलों को...
क्योंकि
उसे आता नहीं
प्यार जताने का
कोई और तरीका,
वो तुमसे बनारस सा
प्रेम करना चाहता है
क्योंकि...
उसे ज्यादा प्रिय
शायद कोई नहीं है उसे।

मन

चाहता है
अलसायी सुबह में...
किसी रोज़ तुम
चाय का प्याला लेकर
जगाओ उसे,
हालाँकि
उसे तलब चाय की नहीं...
सिर्फ तुम्हारी है,
तुम ले जाना उसे संग अपने
उस दिन चौक के टी स्टॉल पर,

२७.
मुझमें कई बार
हर बार
बार-बार
बुदबुदाता बनारस
कभी करता अस्सी की सैर
कभी वरुणा पुल पर
चला जाता ये मन बनारस
कभी घाटों की चहल-पहल
कभी मंदिर की घंटी बनारस

कभी कबीर सा हुआ मन
 कभी प्रेमचंद बनारस
 मुझमें कई बार
 हर बार
 बार-बार
 बुदबुदाता बनारस
 बनारस की गलियों में अटका मन
 आड़ा तिरछा चलता रहता मन
 चाट कचौड़ी की खुशबू सा
 तीखा-तीखा हो जाता मन
 फिर खुद मीठा करने
 जलेबी सा हो जाता मन
 पान गिलौड़ी बिन क्या काशी
 ना खाया तो व्यर्थ के वासी
 मुझमें उलझा-सुलझा बनारस
 हर बार
 बुदबुदाता मुझमें बनारस
 कभी विश्वनाथ मंदिर बसता मन
 कभी संकट मोचन बनारस
 साधु संतों को देख
 मुस्काता मेरा बनारस

मणिकर्णिका की ज्वाला
 और मोक्ष देता बनारस
 शिव नगरी शिव काशी
 हर हर महादेव का
 उद्घोष बनारस
 मुझमें कई बार
 हर बार
 बार-बार
 बुदबुदाता बनारस
 बाला घाट पर गूँजती
 बिस्मिल्लाह शहनाई बनारस
 गलियों में संगीत का स्वर
 पं रविशंकर, लच्छू महाराज बनारस
 मुझमें कई बार
 हर बार
 बार-बार बुदबुदाता बनारस
 बनारसी साड़ी पहनुँ जब भी
 रिझे मोरे सांवारिया
 बनारस की चकाचौंध से
 मन हो जाये बांवारिया
 कृष्ण मेरे प्रियतम्

मैं कृष्ण की बाँसुरिया
बनारस रग-रग बसे
मेरा इश्क बनारसिया।

२८.

ऐ बनारस!
तेरे बारे में क्या कहूँ मैं
तेरे यादों की बारिश में
हर रोज़ भीगती हूँ मैं...

२९.

ऐ बनारस!
ऐ बनारस!
खूबसूरत बहुत है तू
अभी तुझको से मेरे शहर
मैंने देखा कहाँ है?

रग-रग में जिसके महादेव हैं,
हर रज में जिसके सुर बहता है,
माँ गंगा के चरणों से..
निर्मल जल जहाँ बहता है।

सुंदर कलाकृति से सुशोभित
पावन तीर्थ स्थान है,
ऐ बनारस!
तू भारत के सर का ताज है।

अभी मेरे शहर तुझको
मैंने देखा कहाँ है?
खूबसूरत बहुत है तू
तू दिल में मेरे बसता है!

३०.

निश्छल सूरज!
निश्छल पवन!
निश्छल गंगा!
निश्छल गगन!
निश्छल मुझको भी कर देना
जैसे फूल और चमन!
ऐ बनारस!
तुझसा कर देना
तेरी धरती पर जब रखूँ कदम!
हो जाऊँ पावन
कुछ कुछ तुम सी

रे बनारस! जैसे तेरा मन!

३१.

मेरे शहर बनारस का
अलग मिज़ाज
अलग है रंग!
मस्ती में इसके घुलती
ठंडाई के संग भंग!

३२.

मुझे भाती नहीं
अब
सीधी सपाट सड़कें
रे बनारस!
तेरी गलियों में भटके
सक ज़माना हुआ।

३३.

किसी घाट सा सुकून तेरे अंदर
तुझे सोचता हूँ तो खो जाता हूँ तुझमें!
हर शाम मिलने की ख़्वाहिश में तुझसे
वरुणा से अस्सी हो जाता हूँ मैं!

(२)

चाय इश्क

१.

कुछ चाय पर उनसे बात हो जाए
इस बहाने चलो मीठी मुलाक़ात हो जाए।

२

लबों से लगाकर हम चाय का प्याला
अक्सर खयालों में हम तेरे रहते हैं।

३

उप्पफ

बड़ी है बेहिसाब...

सक चाय की चुस्की

सक तेरी याद....

४.

रखती हूँ रोज़... सक प्याला तेरे नाम का भी,

मुझे आदत है चाय संग... तुमसे बात करने की।

५.

ताजगी भरी दिन की शुरुआत
कड़क चाय और तेरा साथ

६.

मुझे चाय पसंद थी उसे कॉफी
अब वो चाय पीता है और मैं कॉफी

७.

सांवला सा इश्क मेरा
रुक चाय... रुक सांवरा मेरा...

८.

यूँ ना उलझो अभी कि उलझनें बहुत हैं
तूने छुआ है चाय को मेरी या चीनी बहुत है

९.

ये चाय की लत भी, बड़ी खराब है
तन्हाई में भी दिलाती, तेरी ही याद है

१०.

००

गर्म चाय संग, तेरी नर्म यादें
खाँभोशी से करती हैं, मुझसे बातें

११.

तेरी प्रीत में चाय पीने लगे
जाते कहाँ हम मधुशाला..
पीने से मतलब रखते हैं
हो चाहे हाथ में चाय का प्याला..

१२.

चाहो भी तो छूटती नहीं
चाय की सी है आदत तेरी भी

१३.

ऐसे ही नहीं शुरू होता
बातों का सिलसिला..
ये चाय तो
रुक बहाना है...

१४.

थोड़ी सी सदी है,
थोड़ा सा जुकाम है,

००

सुनो... आज चाय नहीं
काढे का इंतज़ाम है।

१५.

अजीब सी कश्मकश में हूँ
चाय पीयूँ या तुमसे बात करूँ

१६.

तेरी खुशबू मुझमें बसी है इस क़दर
हम इलायची चाय में अब डालते नहीं

१७.

हर सुबह सुहानी बनारस की
हर गली की हर एक घाट की
कचौड़ी जैसी चटपटी भी
जलेबी जैसी उसमें मिठास भी

१८.

चाय और तुम
अक्सर सोचती हूँ
चाय और तुम
दोनों एक से हो...

सुबह के आगाज़ में
तुम दोनों साथ होते हो
मुस्कुराते हुए...
मुझे यही लगता है
जाने क्यों
तुम दोनों एक से हो..

उबलते पानी में
जैसे बिखर जाता है
चाय की पत्ती का रंग..
वैसे ही
मेरे जीवन में एक सुख है
तुम्हारे प्यार का
मुझे अक्सर यही लगता है
तुम दोनों एक से हो..

पता है
ये इलायची की खुशबू
दूर तक जाती है,
ठीक वैसे ही
जैसे तुम्हारी यादें

तुम्हारे ना होने पर भी
मुझ तक आती हैं
हो ना तुम दोनों एक से...

हो ज़रूरत भी
दिन की शुरुआत भी
हो याद भी तुम
खुशबू की बरसात भी
मुझे लगता है अक्सर यही
तुम दोनों एक से हो...

१९.

रिश्तों की गर्माहट

मुझे चाय का कप
कभी भी हैंडल से पकड़ने की
आदत ही नहीं है,
मैं उसकी हैंडल पर
बस अपनी दो उंगलियों को
टिका दिया करती हूँ
और थाम लेती हूँ
उसे अपनी हथेलियों से,

मुझे उस प्याले की
गर्माहट महसूस करना
अच्छा लगता है,
चाय के अंतिम घूंट तक
मैं उसका तापमान
महसूस कर सकती हूँ,
जब खत्म हो जाती है चाय
और ठंडा हो जाता है कप
वो बंधन मुक्त होता है,
मुझे रिश्तों में भी
उसी गर्माहट की तलाश है,
मैं चाहती नहीं..
रिश्तों की गर्माहट कभी कम हो,
ज़िंदगी के प्याले में
प्यार का भरा होना
सच में..
बहुत ज़रूरी होता है!

२०

एक बार फिर
चाय के रंग में घुल जाते हैं!

इस बार बनारस की गलियों में
चाय पीने जाते हैं!

२१

चाय पसंद है मुझे
पर...

पीने लगी हूँ कॉफी आजकल
तुम्हारी यादें किस तरह
देखो ना...
रही है मुझको बदल

२२

चाय के बहाने
आ जाओ तुम कहीं से
तुम खामोश ही रहना
हम देखेंगे तुम्हें दूर ही से

२३

शाम की उदासी में
एक चाय साथ होती है
और एक तेरी याद...

२४

चाय की सी है आदत तेरी भी
ना सोचूँ तुम्हें तो
हरारत सी रहती है...

(३)
मन चंचल

मुझसे पूछे अक्सर मन मेरा
कौन है तू क्या नाम है तेरा
हँसकर कह देती हूँ मैं भी
ठंडी सी पुरवाई हूँ
मैं दूर गगन से आई हूँ
एक मस्त हवा का झोंका हूँ
जो न समझो तो एक धोखा हूँ
उलझी सुलझी तन्हाई हूँ
रातों की गहराई हूँ
लहरों सी चंचल हूँ मैं
मन में रखती संदल हूँ मैं
किताब में रखा गुलाब हूँ मैं
उमड़ता घुमड़ता सैलाब हूँ मैं
कभी कृष्ण की राधा हूँ मैं
कभी खुद के लिए ही बाधा हूँ मैं

खुद से ही अंजानी हूँ
थोड़ी पगली थोड़ी दीवानी हूँ
निर्झर बहता झरना कभी
कभी ठहरा हुआ पानी हूँ
मन पूछे अक्सर मेरा मुझसे
क्या नाता है तेरा तुझसे
मैं ना जानूँ कुछ बातों का जवाब
बस खुद के लिए हूँ मैं लाजवाब
स्वप्नों में बेबाक हूँ मैं!
शायद यही... जवाब हूँ मैं!

(४)
भेद स्त्री पुरुष का

हो जाना चाहती हूँ
इतना मजबूत...
कि कह सके वो
अपने दिल का हाल,
बहा सके अपने आँसू
रो सके काँधों पर रखकर सर,
वो जो रिसता है
हर क्षण उसके भीतर...
तीव्र ज्वार भावनाओं का,
उसे हिम शिलाओं पर बिछा
आनन्द ले सके
चंचल बयार का,
वो जो दिखता कठोर है
दंभ भरता है
अपने पुरुषत्व का...

क्या कोमल नहीं होता?
क्या उसके हृदय में वेदना नहीं?
शाश्वत है!!
उसका मृदु होना
किसी ओट में विलुप्त है,
ज़री के पर्दों में क्या भेद नहीं होता?
मैं मख देना चाहती हूँ
उस भेद को..
जो उसके और मेरे मध्य है,
और चाहती हूँ जीना
मैं भी कठोर जीवन,
ये आँसू मुझे बोज़िल कर जाते हैं,
सब धुँधला सा जाता है,
और वहाँ मैं देख नहीं पाती
पीड़ा अपने प्रियतम की..
विरक्त हो जाती हूँ
स्वयं से भी..
और विषाक्त हो जाता है
सारा संवाद!!
तिमिर ही तिमिर व्याप्त हो जाता है,
और श्याम वर्ण का सर्प

दंश देकर लुप्त हो जाता है,
हो जाना चाहती हूँ
इतना मजबूत...
कि समझ सकूँ
वेदना उसकी भी...
पर क्या वो मुझसे
छाँट सकेगा अपनी पीड़ा?
कहीं उसका पुरुषत्व
चोटिल तो नहीं होगा?
क्या ये भेद स्त्री-पुरुष का
अनंत तक अपना दंभ भरेगा?

(५)

ढलती उम्र का स्वप्न

आज इच्छाओं का अस्तित्व
विस्तार नहीं...
अति मौन है अम्बर भी!!
चंदा हल्की सी मुस्कान लिये
गुनगुना रहा है एक सपना
ढलती उम्र का सपना!!
क्या है जो गुनगुनाता है वो
गुनगुनाता है मुस्कराकर...
हाँ...
मुस्कुराना स्वभाविक है अब
अब मन शांत है
कोई क्लान्त नहीं
कोई विरह की अग्नि नहीं वहाँ
विरह में भी आनंदित होता
मधुकर को भी कोई कामना नहीं रही अब

प्रेम से उसका परिचय
अब हास्य परिहास का विषय नहीं
वो डूब चुका है बंसी की धुन में
उसकी राग में नृत्य करते हुए
उसके कपोल पर जो लालिमा है
लरज जाती है कभी-कभी..
उसे स्वयं का सानिध्य अब अति प्रिय है!!
मुख मंडल की आभा
उसका तेज, अब अति विस्तार है
वो टिमटिमाते तारों को
जीना सीख चुका है..
अब रातें काली स्याही सी नहीं लगती
नहीं डंसती नागिन जैसे,
जीवन व्यर्थ नहीं..
अब सार्थक सा लगता है
अधरों पर मुस्कान का पर्याय
अब भिन्न है!!
अब भिन्न है हृदय की जिरह,
मकरंद प्रिय है अब भी
पर ललक नहीं हासिल की,
मन स्थिर है

मन शांत है
मन रुक्य है
वो पतित स्वप्न अब उसे नहीं आते
जो अंधेरे का विस्तार कर जाते थे
काँटों से चुभते थे
अग्नि सा जलाते थे
वो स्थिर है
अब अग्रसर है वास्तव में प्रेम पथ पर
अब उसके पास समग्र प्रकाश है
जिससे अलौकिक उससे स्वप्न का तेज
स्थाई रूप से उसमें समा चुका है
अब वो अभिशप्त नहीं
ढलती उम्र के स्वप्न का तेज
निश्चल चमक रहा है
प्रतिफल उसके कपोल पर
और प्रेम का पर्याय आज सार्थक है!

(६)
मन आज़ाद परिंदा

मन के किवाड़ पर
साँकल लगी नहीं...
वो निर्बाध्य
कहीं भी आता जाता है,
निर्भय है...
मुखर है...
कुछ भी बोलता है
उसे घुप्प अँधेरे से भय नहीं
उसे प्रकाश की चाह नहीं
वो अग्रसर है उस पथ पर...
जिसकी चाह...
की थी कभी उसने,
जिसकी चाह...
अभी है उसको,
वो तर्क-वितर्क से परे है,

वो आहत नहीं होता वहाँ...
ये पृष्ठभूमि मन की
स्वरचित है...
चलायमान है...
स्वतंत्र है पूर्णरूपेण,
कभी बाल क्रीड़ा कर हर्षित होता
कभी वात्सल्य से देखता खुद को ही..
वो सत्य-असत्य से परे है,
जानता है
भेद दोनों के मध्य,
कभी निर्लिप्त है...
कभी निर्विकार है...
तो कभी खुद को ही
होकर लोलुप देखता,
मन की किवाड़ पर
साँकल लगी नहीं...
वो मद्धम मुस्काता है,
फटी चादर मन की सीता है,
होकर अधीर मृदु क्षणों की
कड़ियाँ बनाता है,
और बाँधकर स्वयं को

अपने ही मोहपाश में...
उन्मुक्त हो उड़ता है,
वहाँ...
जहाँ कोई शिकारी
उसकी संवेदना को
किसी जाल में नहीं कसता,
नीला आकाश
जहाँ तक दृष्टी पहुँचे अपना है,
मन निश्छल है
कैसे कह दूँ...
वो खुशियों को ही तत्पर है,
मन के किवाड़ पर
साँकल लगी नहीं...
वो निर्बाध्य
अपने लिस अपनी खुशियाँ चुनता है,

(6)
जीने लगी हूँ मैं

खुद की धड़कनें
सुनती नहीं अब...
कि शोर अब अच्छा नहीं लगता,
उनको...
खामोश रहने की आदत है,
और मुझे
वो खामोशी सुनने की,
सुबह चाय का प्याला
हाथ में लिस
उनकी नज़ारे जब अखबार पर होती हैं ना
सच कहूँ
उस लम्हे की लज्जत
लाज़वाब होती है,
वो हवाओं से होते हैं परेशान
की सफ़े रुकते नहीं हाथों में,

और मैं..
मैं पंखे की रफ़्तार बढ़ाकर
थोड़ा करती हूँ उन्हें परेशान,
वो होते हैं नाराज़
और ज़बों पर उतर आती हैं लकीरें
ये नाराज़गी अच्छी लगती है मुझे
वो उलझते हैं जब मुझसे..
मुझे अपना सा लगता है,
वो कहते हैं
मैं सुनती हूँ
नहीं... हमेशा नहीं सुनती मैं
थोड़ा तो झगड़ती हूँ,
कुछ दिनों से
सक नई दुनिया बसाई है,
रोज़ मिलती हूँ
जाने कितने नए चेहरों से,
कुछ नकाब में रहते
कुछ झिलमिलते पर्दे से झाँकते
कुछ एक मुकम्मल दास्ताँ लिख...
कह जाते न जाने क्या क्या
कुछ मुझ जैसे दोस्त

जो मुझे ही मेरी धड़कन से मिलवाते..
बाद मुह्रत के..
सुनी आवाज़ जो अपनी धड़कन की
देखो ना
जीने लगी हूँ मैं!

(८)
प्रेम की कोंपल

जग से बैराग है अब
प्रेम की कोंपल फूट रही हैं,
मन मीरा है
मन राधा अब
कृष्ण विरह से जूझ रही है,

रंग से कोई भेद नहीं अब
प्रेम की कोंपल फूट रही हैं,
जो रंग सब घुल जाय
श्याम रंग है,
श्याम की चहक अब कूक रही है,

लोक लाज ना परवाह अब
प्रेम की कोंपल फूट रही हैं,
मन में संगीत

तन में नृत्य है,
घुँघरु सी मन में गूँज रही है,

गंतव्य की अब चाह किसे है
प्रेम की कोंपल फूट रही हैं,
जिस पथ पर
पद चिन्ह हो प्रियतम के
चलने की उधर ही हूक रही है।

(९)
औरत जब बोलती नहीं

औरत जब बोलती नहीं!
बहुत कुछ कहती है,
चुपचाप रहती है...
मौन न खोलती है,
शून्य सी देखती रहती है
आकाश के उस नटखट चंदा को भी,
आँखों को भींचकर...
पौधा सुख का सींचा करती है,
बातों की गठरी
संदूक में भरकर...
भूला देती है...कभी खुद को भी,
धूल की परत तक हटाती नहीं...
क्यूँ भूल जाती है...
वो खुद को..
सच है

वो जीती नहीं कभी खुद के लिए,
अनवरत जीती है
अपने प्रियजन के लिए,
बचपन फूल सा छोड़कर
जिस दिन बैठती है डोली में..
वो भूल जाती है जीना
हाँ.. बिल्कुल भूल जाती है
खुद के लिए जीना,
समय चक्र सी भागती रहती है,
पल भर भी ठहर जाने का..
समय कहाँ उसके पास,
और भागते हुए
कब अलहड़पन..
संजीदगी में गुम हो जाता है
उसको भी खबर नहीं होती,
वो चुप-चुप सी
खोई-खोई सी..
सबकुछ समेटकर एक दिन
बस मौन वो हो जाती है....

(१०)
कोरा कागज़

मैं लिखना चाहती थी
प्रेम में एक कविता
मैंने छोड़ दिया
कागज़ कोरा...

मैं गढ़ना चाहती थी
प्रेम की परिभाषा
उसका अस्तित्व
अनन्त तक व्यापक था
मैं गढ़ न सकी परिभाषा
मैंने प्रेम को
ईश्वर पर छोड़ दिया...

मैंने लिखना चाहा
जब भी रंग प्रेम का...

वो फूल सा लगा
तो कभी उसपर पड़े बोसे जैसा
कभी चाँद
कभी सूरज
कभी धरती जैसा
मैं लिख न सकी रंग प्रेम का
शायद इंद्रधनुषी होगा...

मैं लिखती रही कविता
और फाड़ती रही सफ़े
रंग श्वेत ही रह गया पन्नों का
और बैठी रही उदास
तभी...
श्याम वर्ण अंकित हो गए
और रच गई एक कविता

क्या... यूँ रची जाती है
कविता प्रेम पर
जब मन उदास हो
और मन हिलोरे मारता हो
कुछ कहने के लिए....

(११)
सकांत प्रिय है मुझे

सकांत प्रिय है मुझे
वहाँ चलता है
अंतहीन संवादों का सिलसिला,
वहाँ बसंत है हमेशा,
पीली धूप
पीली सरसों
पीताम्बर मन है वहाँ,
लेपकर हल्दी चंदन
निखरता स्वप्न है,
मन के कुसुम पर
बोसे प्रेम के...
हौले से छू जाते हैं जब कभी...
झंकृत हो जाता है
संपूर्ण स्वप्न,
और मन मयूर

नृत्य करता है अपने पंख फैलाकर,
सकांत इसलिये भी प्रिय है मुझे
क्योंकि वहाँ अस्तित्व मेरा
कोई रौंदने नहीं आता,
वहाँ ओढ़कर
अपना स्वाभिमान
मैं उन्मुक्त उड़ सकती हूँ,
परिंदों जैसे चहक सकती हूँ,
कर सकती हूँ मुक्त संवाद
अपने अंतर्मन से,
मुझे प्रिय है सकांत
कि वहाँ कोई आता जाता नहीं,
जी सकती हूँ वहाँ अपना बचपन
जी सकती हूँ उस आँगन में
जहाँ कभी चलना सीखा था मैंने,
जहाँ मेरे सपने सच हो जाते थे,
हाँ...
सकांत प्रिय है मुझे
वहाँ मैं मिलती हूँ मुझसे
और करती हूँ ढेरों बात
अपने आप से,

अंतहीन संवादों का सिलसिला
कुछ यूँ चलता है सकांत में..

(१२)
मुझे पता था

मुझे पता था वो जाते-जाते
मेरे लिए कुछ छोड़ जायगा
मेरा मन साथ ले जाकर
अपना यही छोड़ जायगा

छोड़ जायगा कुछ यादें
और कुछ तन्हा सी रातें
मेरे मन की भीतर वो अपना
सक मन छोड़ जायगा

सक खामोशी जो चुभती नहीं है
सक याद जो रुकती नहीं है
वो मेरी खामोशियों के संग अपनी
खामोशी जोड़ जायगा

मुझे पता था वो जाते-जाते
मेरे लिस कुछ छोड़ जासगा
मुझको अपना बनाकर वो
मुझको खुद से पराया कर जासगा

एक आँच भीतर है मेरे
एक आँच भीतर है तेरे
इस लौ में जलकर मन मेरा
शायद कुंदन बन जासगा

मुझको तेरी आस नहीं है
तेरे भीतर भी प्यास नहीं है
ये सुंदर अहसास एक दिन
अम्बर पर छा जासगा

मुझे पता था वो जाते-जाते
मेरे लिस कुछ छोड़ जासगा
मेरा मन साथ ले जाकर
अपना यही छोड़ जासगा

(१३)

मैं बन जाना चाहती थी

मैं बन जाना चाहती थी
तेरे प्रेम में एक कविता...
मैं बन न सकी
पर रच दी
तेरी लिस कई कविताएं...

मैं बनना चाहती थी
तेरे प्रेम में एक ठंडी हवा
जो छूकर तुझको
गुजर जाती है,
मैं बन न सकी हवा भी
तुझे छूना तो था
पर छोड़कर जाना
मैं कर न सकी..

मैं बनना चाहती थी
तेरे प्रेम में एक तितली
जो अपने सुंदर रंगों से
मोह लेती है, किसी का मन
मैं बन न सकी तितली
जो मोह लेती है मन किसी का
मैंने तेरे मोह रंग में
खुद को भीगा लिया...

मैं बनना चाहती थी
तेरे प्रेम में तुझ जैसा
जिसने मुझे प्रेम सिखाया है
पर बन न सकी तुझ जैसा
बदल न सकी खुद को
क्योंकि मेरी नादानियों से
तुझे प्रेम था....

(१४)
अधूरी ख़ाहिश

मुझे पता था
उसके सुनहरे सपनों की मंज़िल
कहाँ है...
वो नन्ही सी कली
जीना चाहती थी
खुलकर मुस्कुराना चाहती थी
अभी वो
सीख भी न सकी थी चलना..
अभी उसने
सुआ भी नहीं था
नर्म ओस की बूँदों को..
उसे ये दुनिया
लगी थी बेहद खूबसूरत,
और जीने की उमंग का
विस्तार होने लगा था,

मुझे पता था
उसके सुनहरे सपनों की मंज़िल
अभी बहुत दूर थी,
वक्त के थपेड़ों ने
उसकी ख़्वाहिशें
अधूरी रक्खी...
और आँधियों ने मचलकर
भूखे भेड़िये की तरह
नोंच डाला उन्हें...

(१५)
खूबसूरत होता है

सबसे सौँधा होता है
चूमना बारिश का
सूखी मिट्टी को...
वो उड़ा ले जाती है
उसकी सारी जलन
वाष्प बनाकर....

खूबसूरत होता है
चूमना स्याही का
सक कोरे कागज़ को,
रच जातें हैं
कुछ इस तरह
मीठे गीत कई...

मीठा सा सहसास होता है

चूमना ओस की बूँदों का
किसी पुष्प को...
वो झूम उठते हैं
और दे जाते हैं
हमारे होंठों पर
हँसी अपने रूप की...

इन सबसे परे
सबसे खूबसूरत होता है
चूमना एक क्षण का
अपने शिशु को...
ये ममता भरा स्पर्श
देता है शिशु को
एक सुरक्षा कवच...

(१६)
एक दिन

एक दिन
विलीन हो जाएगा
समन्दर भी नदियों की तरह,
स्त्रियों ने समन्दर
सोख लिया है अपनी आँखों में,

एक दिन
चिड़िया छोड़ देगी चहकना
नन्ही मासूम बेटियों की तरह,
उन्होंने देखा है
हर गली में
भेड़ियों को घुमते हुए,

एक दिन
बादल बरसना छोड़ देंगे

उन्हें ज्ञात हो गया है,
धरती पर अब उन्हें
नर्म स्पर्श फूलों का
मिलेगा नहीं...
और वो चोटिल होंगे
रेत से टकराकर...

(१७)

तुम प्रणय न अपना जतलाना

मुझसे न मेरा परिचय है
मुझको मुझसे मिलवा जाना,
सक दिन हथेली पर मेरे
सूरज तुम उगा जाना,

आना मगर चुपके से तुम
कि तुझको, तेरी भी न आहट हो,
सर पर चंदा ओढ़ लेना ऐसे
कि घुँघरू में भी सन्नाहट हो,

लोगों को चुभते हैं, सुख अपने
तुम प्रणय न अपना जतलाना,
मेरी आँखों के कोरों से तुम
बस सक बार नज़र मिलाना,

मैं चूम कर तेरी नज़रों को
खुद से ही मिल जाऊँगी,
तेरी नज़रों में देखकर सूरत अपनी
थोड़ा सा इतराऊँगी,

हो सकता है खुद की पहचान
इस तरह से मिल जाए,
तू मुझसे मिलने ओढ़कर चंदा
ज्योती पर जो मेरी आस,

(१८)

प्रसिद्धि की चाह में..

प्रसिद्धि की चाह में..
लिखे हुए शब्द
चूस लेते हैं
कविताओं का सत,
और वो बेज़ान सी
सिमट जाती है,
किसी कागज़ पर....

प्रसिद्धि की चाह में..
रुक जाता है
मस्तिष्क का चलना,
अपितु..
तीव्र हो जाता है
कलम का वेग,
और वो रचती है

अनवरत कोई कविता
जिसका अस्तित्व
उसे स्वयं ज्ञात नहीं होता!

प्रसिद्धि की चाह में..
छप जाती हैं
अनेकों पुस्तक,
जो छप तो जाती हैं
पर..
अपनी छाप
छेड़ जाने में
असमर्थ होती हैं,
वो चलती जाती हैं
निर्विकार सी
उस दिशा की ओर..
जहाँ आत्मसंतुष्टि का द्वार
हमेशा के लिए बंद हो जाता है!

प्रसिद्धि की चाह में..
छूट जाते हैं अपने
जिन्होंने कभी

थामा होता है हाथ
हर मुश्किल समय में,
और इस डगर पर चलते हुए
वो..
कब पीछे छूट जाते हैं
पता ही नहीं चलता,
मुड़कर देखने पर मिलता है,
बस..
सक घना जंगल
जानवरों से भरा पड़ा,
जो कभी भी
नोंच लेने को आतुर होता है!

(१९)

उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!

वो कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि उन्हें मिल जाता है
वक्त पर धुला हुआ तौलिया,
उन्हें पता नहीं..
वो खुद वाशिंग मशीन में नहीं जाता,
उसे पता नहीं होता
वो कब गंदा हो गया,
और उसे धुल जाने की ज़रूरत है!

वो कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि मिल जाती है उन्हें
इस्त्री की हुई कमीज़,
मिल जाती है जुराबें और जूते
उन्हें ये सोचना नहीं होता
कि रुमाल और पर्स
उन्होंने रखा की नहीं..

पर वो जानते हैं नाराज़ होना
जब मिलती नहीं चीज़े!

वो अक्सर कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि उनकी पसंद का नाश्ता
उन्हें हर दिन
डायनिंग टेबल पर सजा मिलता है,
वो वक्त बेवक्त जब भी आते हैं
थक-हारकर घर,
उन्हें मिल जाता है
ट्रे में सजा पानी का गिलास,
उन्हें खुद भी शायद पता नहीं होता
उन्हें ज़रूरत है इसकी!

वो कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
थककर जब उनके सिर में
दर्द होता है ना..
नर्म स्पर्श हाथों का
उन्हें कितना भला लगता है
वो नहीं जानते,
वो बेखबर सो जाते हैं
कि सुबह चाय का प्याला
खुद ही उनके पास आ जाता है

उन्हें प्यारी नींद से जगाने,
जिसकी शायद...
उन्हें ज़रूरत नहीं होती!

पर सच ही है शायद
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि ये सब काम वो
बखूबी कर सकते हैं,
और हमसे बेहतर कर सकते हैं,
वो महीनों पोंछ सकते हैं
उसी तौलिये से अपना बदन,
वो कमीज़ की आस्तीन के
टूटे बटन को टाँकते नहीं...
वो मोड़कर आस्तीन
स्टाइल में जीना सीख जाते हैं!

वो सच ही कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं होती हमारी!
वो नाश्ते में ब्रेड खाकर भी
जा सकते हैं अपने काम पर,
उन्हें आलू के परांठे की
ज़रूरत महसूस भी न होगी,
उन्हें ज़रूरत नहीं...
जब वो लौटे तो कोई उन्हें
पानी का गिलास हाथ में थमाए,

वो सच ही कहते हैं
कि उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि वो सो सकते हैं
सिर दर्द में,
एक अदद टेबलेट खाकर...
वो उठ सकते हैं
मोबाइल में अलार्म लगाकर...
वो कर सकते हैं
बार-बार स्नूज़ अपने मोबाइल को,
पर उठ सकते हैं
बिना किसी चाय के प्याले के!

हाँ...
वो सच कहते हैं
उन्हें ज़रूरत नहीं हमारी!
क्योंकि वो जानते हैं
हम उन्हें छोड़कर जा नहीं सकते,
और हमें यकीन है
जब ऐसा होगा...
वो पकड़कर कलाई, रोक लेंगे हमें!

(२०)
प्रेम में...

वो प्रेम में
बन जाना चाहता था,
ईश्वर!
वो बन न सका इंसान...
उसे बाँसुरी की धुन
कभी प्रिय न लगी,
वो छेड़ न सका
कोई प्रेम राग!

वो प्रेम में
बन जाना चाहता था
एक कवि!
उसने रच दी
अनेक कविताएं...
पर बस न सका

हृदय में अपने प्रिय के,
उसने...
कवि बनने की चाहत में
खुद को भी भुला दिया!

वो छूना चाहता था
प्रेम में...
अम्बर सी ऊँचाई!
उसने छू ली
वो ऊँचाई...
और रच दिया इतिहास...
पर अपने प्रिय का मन
पढ़ न सका!
और दे न सका
मुस्कान का कोई कारण
अपने प्रिय को!

वो प्रेम में
सब कुछ बन गया...
पर बन न सका
एक प्रेमी!

कि इच्छाओं का अंत
उसने जाना नहीं कभी...
उसकी तृष्णा ने
उसे
सिर्फ स्वार्थी इंसान
बना दिया!

(२१)
और कितनी प्रतीक्षा

और कितनी देर
करती मैं उसकी प्रतीक्षा!
उसका जाना तय था
पर लौटकर आने की तारीख
तय न थी,
मैं करती रही प्रतीक्षा सालों साल...
जब उम्मीदें टूटने लगी
एक दिन वो लौट आया...

और कितना विश्वास
मैं करती उस पर!
कि जब तक विश्वास था
उसने निभाया नहीं कोई रिश्ता...
अब जब लौटा है
बदला-बदला सा है,

उसने सीख लिया है जीना
मेरे बिना...

और कितना देख पाती
मैं उसकी उदासी!
कि खुद की उदासियों ने
जकड़ रखा है मुझे...
उसकी उदासियाँ
दिखती नहीं अब मुझको
उसकी खोई मुस्कान
अब लौटा न सकूँगी,
अब लौट पाना
संभव नहीं...

अब पहले जैसा
कुछ भी तो न रहा!
जीवन रुकता नहीं
ना ही मृत्यु आती है
किसी के जाने से...
अपितु सीख लेते हैं हम
जीना...
एक दूजे के बिना...

(२२)

वो आता नहीं

उसे मेरे घर का पता
मालूम है मगर
वो आता नहीं...
उसे मेरे दिल का पता
मालूम है मगर
वो दिल मेरा
क्यों लुभाता नहीं...

वो समझता है बातें
मेरे दिल की,
फिर भी वो
क्यों समझना चाहता नहीं...
वो समझता है
शायद उतना ही
जितना लिखा है मैंने...

वो करता है इश्क़ जो मुझसे
तो समझता मेरे दिल की...
जो मैंने कभी लिखा ही नहीं...

वो जानता है पता
मेरे घर का...
फिर भी वो जाने क्यों
कभी आता नहीं...
वो उलझन में है
शायद कोई...
उन उलझन से वो
पार क्यों पाता नहीं...

है अगर वो नाराज़ मुझसे
अपनी नाराज़गी
क्यूँ जताता नहीं...
होते हैं फ़ासलों से
फ़ैसले नहीं...
दूरियाँ फिर क्यों
वो दरमियाँ हमारे
मिटता नहीं...

जी सकेगा क्या वो
हमारे बिना...
हमें उसके बिना
मुस्कुराना भी आता नहीं...

उसे मेरे घर का पता
पता है मगर
वो आता नहीं...

(२३)
लड़ाकी औरतें

लड़ पड़ती हैं
बेवज़ह ही...
उन्हें खुद भी नहीं पता होता
वो
किस बात पर नाराज़ हैं,
शायद
पति ने
किया होगा आहत उसे...
या फिर
बेटे ने की होगी मनमानी,
वो
हताश होगी शायद...
जो कहीं भी अपना
बस न चलने पर
लड़ पड़ती है

सब्जी वाले से भी...
बेवज़ह ही करती है
मोल भाव
यद्यपि
वो खरीद लेती है सारी सब्जियाँ
उसी दाम पर
जो सबजी वाले ने बताए थे...

ये लड़ाकी औरतें
क्या बचपन से ही
होती हैं ऐसी
या फिर
कोई स्वप्न अधूरा रह जाने पर
अपने मन के द्वंद को
इस प्रकार निकालती हैं...
शायद
बचपन में मिली नहीं गुड़िया कभी
और थमा दी गई
घर की बुजुर्ग औरतों द्वारा
घर की बड़ी सी रसोई
जिसमें फूँक गई

उनकी मासूमियत
और वो सपने
जो बुने थे कभी उन्होंने...

ये लड़ाकी औरतें
सच में
होती हैं समझ से परे
जब ये नवयौवना थीं
उन्हें
गली के नुक्कड़ पर खड़े
सीटी बजाते लड़के
अप्रिय थे...
जबकि
ये लड़के
प्रेम की खोले दुकान
हर पर इनकी करते थे प्रतीक्षा
कॉलेज के गेट पर...

सच ही होती हैं
बड़ी लड़ाकी ये औरतें
इन्हें प्रेम की कोई

परवाह ही नहीं होती,
बस रक्षा करती हैं
अनवरत अपने आत्मसम्मान की,
वो प्रेम नहीं चाहती किसी से...
नहीं चाहती और कुछ भी
सिवाय
आत्मसम्मान के...
जिसके घायल हो जाने पर
खो देती हैं
अपनी मासूमियत
और बस
बन जाती हैं
लड़ाकी औरतें....

(२४)

गज़ल

हमको डर है कि वो मिले न मिले
आदमी किस तरह के अब हमको मिले

हमको आसमाँ का गुमां था बहुत
सर छत फिर हमें मिले न मिले

आदमी किस तरह के, अब हमको मिले

ओढ़कर देखा जो हमने आसमाँ को कभी
पाँव हर दफ़ा, हमें खुले ही मिले...

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

पाँव के नीचे है... ज़मीं अपने
ऐसे वैसे... कैसे हमें खयाल मिले

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

चलते-चलते राहों में लड़खड़ा ही गए
ज़मीं का गुमां भी अब... कैसे करें

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

था गुमां खुद पे जो हमको बहुत
अजनबी राहों में इश्क़ से जा मिले

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

इश्क़ में दर्द है तन्हाई है
जाने क्या-क्या न सितम हमको मिले

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

कैसे करते गुमां अब हम खुद पर
अपने ही दिल के, टुकड़ों से मिले

आदमी किस तरह के अब हमको मिले

वादों पर मर मिटना, हमने नहीं जाना था

रुह के मिलन का गवाह शफ़क़ होता है

ज़मी को मिलता नहीं आसमाँ तुमसे जाना था

(२५)

गज़ल

तेरा आना ज़िंदगी में, सक बहाना था
हमको खुद से ही, खुदा को मिलाना था

बढ़ती उम्मीदों का दायरा, न था कभी
तुमसे मिलके, ये दायरा मैंने जाना था

जिस्म की जरूरतों का अंत नहीं
रुह मिलने का हुनर, तुमसे...ही तो जाना था

ख़्वाब क्यों देखूँ जो मुकम्मल नहीं...
मुख़्तसर ख़्वाहिशों का खुदा तुमको माना था

है रौशन दिल के चिराग़ तुझसे ही
जलने बुझने का सिला, तुमको माना था

करके वादे अक्सर, तोड़ देते हैं लोग

(२६)
ग़ज़ल

ये चाँद ढल रहा जो
रात मुमकिन नहीं
तेरी निगाहों का ज़वाब अब
मुमकिन नहीं...

करेंगे बातें और भी
जो अधूरी हैं
कि अधूरी रातों में
बात मुमकिन नहीं....

तुम आना ओढ़कर पहरे
कभी चाँद रातों के...
कि स्याह रातों में
दीदार तेरा मुमकिन नहीं...

अदारं जानती हो सारी

तुम मोहब्बत की,
मुझसे करोगी कभी इज़हार
ये मुमकिन नहीं....

रुह में बातें हज़ारों
आती जाती हैं
सवाल दिल में बेहिस्साब
ज़वाब मुमकिन नहीं...

तेरे क़दमों के निशान
चाँद तक जाते हैं
रोक लेना उसको आज
मुलाक़ात मुमकिन नहीं..

कि ढल गया है
देखो चाँद
ख़वाब कोई भी
अब मुमकिन नहीं...

(२७)
मौत का रजिस्टर

तितली
बैठी रहती है हरदम
अपनी मौत का रजिस्टर लिख...
जब बैठती है वो फूलों पर
सहम सी जाती है
किसी भी आहत पर...
वो पंख पसार उड़ जाती है
फिर खुले आकाश में,
पर
पर क्या उसने वो रजिस्टर छोड़ दिया?
नहीं था मे हुर है अब भी वो
क्योंकि वो जानती है
कुछ नज़रे उसपर से
हटी नहीं अब तक...
नन्हें बालक देख उसे

मुस्का रहे हैं
वो चाहते हैं
मुड़ी में भींचना उसे...
वो उसे दुलारना चाहते हैं,
पर वो जानते नहीं
ये छुई-मुई सी तितली
बंधन से अंजान है,
उसकी परिणति है
उसका शुद्ध आचरण,
उसे किसी का भी स्पर्श
असहनीय है!
वो त्याग देती है अपनी देह
किसी के स्पर्श मात्र से...
उससे उत्तम आचरण
किसका होगा??
जो स्वयं ही अपनी
मौत का रजिस्टर
अपने साथ रखती है,
और त्याग देती है देह
अपने अस्तित्व को बचाने हेतु...

(२८)
रे साँझ ठहरो

पल भर ठहरती
और करती बात मुझसे
रे साँझ..
तू ठहरती क्यों नहीं
सुबह के मानिंद सी लगती कभी
तो कभी स्याह काली रातों की
तू.. तुझसी कब लगती है?
क्या पहाड़ी के पीछे
जो उगता है चंद्रा
संग उसके खेलती है तू..
या रश्मि से अठखेलियाँ करती
दिवाकर के झूले पर झूलती है तू..
साँझ..
तुम प्रिय हो मुझे
क्षितिज संग तुम्हारे हँसता है

और मैं तुम्हारे संग..
तुम्हारा सिंदूरी रूप
मुझे मेरे माथे की बिंदी लगता है
जिसे सजाकर अपने माथे पे
झूमती हूँ मैं!
तुम्हें पता है..
जब तुम ठंडी बयार संग लाती हो
मैं महक उठती हूँ
चहक उठती हूँ
संग तुम्हारे झूम उठती हूँ
और हँस पड़ती हूँ अनायास ही..
सुनो साँझ..
इतनी जल्दी न जाया करो
पल भर ठहर जाओ
और करो बात मुझसे!

(२९)

प्रेमी होना आसान नहीं

प्रेमी हो जाना
इतना आसान नहीं होता,
उसके लिए
मारनी पड़ती है
कई इच्छायें....

प्रेमी हो जाना
सहज हो जाना है,
उसके लिए
अमावस की रात भी
पूर्णिमा जितनी
खूबसूरत होती है!

प्रेमी हो जाना
खुद से प्रेम करना है,

अवसाद से
ग्रस्त इंसान
क्या वाकई जानता है
प्रेम क्या है?

प्रेमी हो जाना
प्रेम को
पा लेने की चाहत नहीं...
उससे इतर
खुद की तलाश है
जहाँ
हो जाता है
आपको आपसे ही प्रेम!

(३०)
मन की लिपि

जिस रोज़ तुमने
मुझे पढ़ लिया था
अनजाने ही
तुमने छुआ था मेरे मन को,
मैं खुली किताब सी
पर सबकी समझ आती नहीं...
शायद वो लिपि मन की
कठिन है,
बढ़ी सकरी हैं गलियाँ
वहाँ तक पहुँच पाना
सम्भव नहीं सबके लिए...
वो अधर पर खिलती मुस्कान
खुशियों की परिचायक है,
पर कितनी खोखली है
शायद

सबकी समझ से परे है,
जिस रोज़ तुमने जान ली थी
इसकी सच्चाई
सच ही तुमने छुआ था
उस रोज़
अनजाने ही मेरे मन को..

(३१)

स्वप्न जंगल में

कल रात का स्वप्न
अब भी याद है मुझे,
मुझे मिली थी वहाँ
मुझ जैसी ही एक स्त्री...
जो थकी सी थी
उसके चेहरे का तेज़
ओझल सा हो रहा था,
वो जिद्दी थी
किसी शिशु की भाँति...
उसने किसी को
अपने साथ चलने नहीं दिया,
वो चल रही थी
किसी अनवरत यात्रा पर...
बिना थके
बिना रुके

पर...

अब शायद थकने लगा था
कहीं न कहीं उसका मन,
उसे ज़रूरत थी
किसी ऐसे साथी की,
जो थपथपा सके उसकी पीठ
उसकी जीत पर...
जो गले लगा सके उसको
किसी भी
वेदना से बचाने के लिए...
उसे ज़रूरत थी ऐसे साथी की
जो समझ सके
बिन बताये भी
उसकी सारी अनकही,
क्योंकि...
उसने सीखा नहीं था
बताना कुछ भी,
उसे आदत थी
मुस्कुराने की,
उसे चाहिए था साथ किसी का..
पर उसने कभी

महसूस भी ना की थी जरूरत किसी की,
उसे आदत थी
स्वयं से जुझने की,
काश!
कोई समझ सकता उसकी पीड़ा,
मैं भी छोड़ आई
उसे रात के स्वप्न जंगल में...
इस आशा से
कि अगली रात
जब मिलूँगी उससे,
कसकर लगा लूँगी गले...
उसकी पीठ थपथपाकर
कहूँगी
कि तुम अनमोल हो,
तुम चल सकती हो
किसी भी पथ पर...
तुम्हें जरूरत नहीं किसी साथी की,
फिर भी
मैं चलना चाहती हूँ साथ तुम्हारे,
क्योंकि
मुझे जरूरत है

तुम जैसे साथी की,
पर....
शायद कह देना चाहिए था
मुझे ये पिछली रात ही,
वो चली गई ना जाने कहाँ..
फिर मिली न मुझको कभी,
सोचती हूँ कभी
कहीं
किसी पहाड़ से नीचे तो नहीं गिर गई!
या किसी खाई में गिरते समय
किसी शाखा से लिपटकर
उसने आवाज़ तो नहीं दी होगी!
और अगर इन सबसे
बच गई होगी तो..
कहाँ होगी?
कहीं किसी यतीमखाने में
दम तो नहीं तोड़ दिया उसने,
सर फट रहा है
सोचकर ये सब...
कि काश!
उसी दिन गले लगा लिया होता उसे,

काश!

रोक लिया होता उसे,

काश!

कि एक जीवन बचा पाती मैं...

काश!

कि समझ पाती मैं

कि वो कोई और नहीं..

मेरा ही साया था,

जो दम तोड़ रहा था

और मैं उसे बचा भी न सकी..

(३२)

ग़ज़ल

रातभर जागकर तुझको देखा किस
तू कहाँ गुम हो गई, सहर की आगाज़ में

राह तेरी तक़, क्यूँ तू मिलती नहीं
देख, नाशाद हो गया हूँ, तेरे इंतज़ार में

हो जो, फ़लक तुम, और मैं हूँ ज़मीं
चल उफ़क़ पर मिले, शफ़क़ की बरसात में

मुझसे तन्हा मिला इक रोज़ जो कहीं
इज़हार-स-दिल मैं करूँ, निगाहों ही निगाह में,

खैरियत मेरी तू, कभी क्यूँ लेती नहीं
इक मुद्दत से तबियत ये नासाज़ है

(३३)

रक्षाबंधन

आँखों की चमक का खो जाना
कच्चे सूत सा है,
जो काम नहीं आता
किसी रफू में भी,
वो बहन के हाथों से फिसल
औंधे मुँह पड़ा है
किसी कदमों तले,
रक्षाबंधन में क्या पहले सी मिठास
अब भी बाकी है?
क्या तुम्हारे घर अब भी
खीर से मुँह मीठा किया जाता है?
क्या बनते हैं पकवान
भाई की पसंद के...
क्या चायनीज़ राखियों ने
रेशमी धागों की जगह तो नहीं ले ली...

जो सजते थे कलाई पर तो
अपनी मुलाइमियत का अहसास कराते थे,
वो चुभते नहीं थे
ना उतार दिए जाते थे
वो तब भी सजते थे उस कलाई में
जब वो बदरंग हो जाते थे,
वो गर्मजोशी पहले सी
कहाँ ही रह गई..
हूँह..
तुम भूल चुके हो जीना
तुम भूल चुके हो
अपनी संस्कृति..
तुम्हें परवाह नहीं
उनकी भी जो दिखाते नहीं
अपने खून के कतरे..
वो नहीं मनाते रक्षाबंधन
अपनों के संग,
वो जिससे लड़ते हैं हमारी खातिर
अनजाने ही हम साथ दे रहे उनका ही
क्यों..
हम क्यों नहीं देते मुस्कान

चौराहे पर बैठी उस छोटी सी बच्ची को,
जो कब से बैठी है
चिलचिलाती धूप में
अपने हाथों से बने
कच्चे सूत को लिये...
हमें क्यों चमकती दुकानें
अपनी ओर खींचती हैं,
हमारे अंदर की संवेदना
मर गई है शायद...
या शायद अब
पहले जैसी वो बात ही नहीं रही...
कोई त्योहार
हर्षोल्लास के साथ,
क्या मनाते हैं हम!
खुद से पूछना एक बार
शायद...
जवाब मिल जाए तुमको,
शायद...
लौटना चाहो अपने बीते कल में,
शायद...
सरहद पर खड़े वीरों की

परवाह होने लगे तुमको...
शायद...
उस रिश्ते की गर्माहट
महसूस कर सको तुम...
शायद...
मुमकिन है सबकुछ
पर..
इसके लिए रोपना होगा तुम्हें
अपना ही एक पौधा
जो तुम्हें छांव दे सकेगा,
इस बार राखी तुम
उस नन्ही बच्ची से ले लेना
जिसमें चमक तो नहीं
पर रिश्तों की मजबूती
उससे अधिक शायद कहीं नहीं है

(३४)
अंधेरों से मुक्ति

मन के धीरे पर
बिजली सी कौंधी है,
ये कौन है
जो खटखटा रहा है
किवाड़ मेरे आँगन का...
साँकल तो लगाई है
फिर भी घबरा जाता है मन,
उसे पता है
देह सुरक्षित है उसकी...
फिर भी
चकाचौंध हो जाती हैं पुतलियाँ
किसी भी आहट पर...
ये असुर सा मुँह फाड़े
नित्य ही आ जाती है निशा,
शाश्वत है ये नियम...

फिर भी
अपना न सका ये मन
डंसती काली रातों को,
कल आँधियों ने
उड़ा दिये थे परखच्चे
खिड़की पर पड़े पर्दों के,
अब वो भयानक सी लगती हैं
जब लहलहाती हैं
घुप्प अंधेरों में,
मन अधीर हुआ जा रहा है
उसे उजालों की खोज है,
रुक बार
बीत जाय ये रात...
फिर करूँगी अभ्यास
दिन के उजालों में
इन घुप्प अंधेरों से मुक्ति पाने का,
पर क्या
मुक्ति इस तरह सम्भव है?

निगाहों से तो हरदम वो बताता है
मेरा इश्क मुझसे ही शर्माता है

(३५)

गज़ल

मुझे दरवाज़े की ओट से निहारता है
मेरा इश्क मुझसे ही शर्माता है

जब कभी मिल जाती नज़रें
वो नज़रें मुझसे चुराता है
मेरा इश्क मुझसे ही शर्माता है

ख़बर रखता है जो मेरी वो
क्यों बेख़बर है, ऐसा जताता है
मेरा इश्क मुझसे ही शर्माता है

कुछ दिनों से लगने लगा है बेचैन मुझको वो
मैं न रहूँ तो दिल उसका कोहराम मचाता है
मेरा इश्क मुझसे ही शर्माता है

कहाँ क्या मैं ऐसा कि जुबां तब बात पहुँचे

(३६)
सिर्फ साँसें लेना ज़िंदगी नहीं

सारे बंधनों से
मुक्त कर देना चाहिये
कभी खुद को भी,
कि साँसें लेना ही
ज़रूरी नहीं जीने के लिए...
उन्मुक्त उड़ान भरने की चाहत
किसमें नहीं होती!
कौन नहीं चाहता
जी भर आकाश को तकना!
किसको नहीं भ्राती
भिड़ी की खुशबू!
कभी नंगे पाँव भी
चाहत होती है चलने की...
कभी मन उड़ जाना चाहता है
बादल के पीछे की दुनिया में...

पर...

पर खुल नहीं पाते बंधन
तो कभी हम
खोलना ही नहीं चाहते,
बस बँधकर जीने की आदत भी
क्या आदत है,
कभी तो खोलने होंगे बंधन
कभी तो भरनी होगी
सक उड़ान आकाश की तरफ
शायद देह मुक्ति के बाद
इसीलिए हम बन जाते हैं
चमकता हुआ एक तारा,
जीते जी...
क्या नहीं किया जा सकता
खुद को मुक्त
सिर्फ एक दिन के लिए....

(३७)
कोरोना

कुछ इस तरह
कहर है कोरोना का
कि हम भूल गए
छोटी-छोटी बीमारियाँ,

अब हमें पेट की
कोई समस्या नहीं होती...
हमने टेले पर खड़े होकर
चाट पकौड़े खाना छोड़ दिया है,
हमें अब रेस्टोरेंट की
तलब नहीं होती...

इस तरह अब हमने
छोड़ दिया खाना टेबलेट
पेट से जुड़े रोगों के लिए...
अब हमें इसकी जरूरत नहीं!

अब हमें बेवज़ह ही
नहीं होता सर्दी जुकाम,
ना आती हैं छीकें
ना ही आती है खांसी...
हमने सीख लिया है
इनका उपचार,
हम बिना नागा
पीने लगे हैं काढ़ा
अब हमें ये बीमारियाँ
छोटी नहीं लगती,
हम दवाओं के भरोसे
अब नहीं रहते,
हम कर लेते हैं
इसका उपचार स्वयं
कुछ होने से पूर्व ही...
अब हमें इन दवाओं की जरूरत नहीं!

अब य़ूँही नहीं काटते चक्कर
अस्पतालों के,
अब धुर्र से दम घुटे
उससे पूर्व ही

बाँध लेते हैं मास्क अपने मुँह पर...
हम सचेत हैं अब
हालाँकि
दौड़ती नहीं गाड़ियां
अब सड़कों पर उसी रफ़्तार से,
दम घुटाने वाले धुर्र ने
दम तोड़ दिया है,
अब हमें ज़रूरत नहीं पड़ती
उन दवाओं की जो साँसें दे!

अगर चलता रहा यूँही
कुछ दिनों में सीख लेंगे हम
छोटी-छोटी बीमारियों का इलाज,
अब विलुप्त हो जायेंगी वो दवाएँ
डायनासोर की तरह ही
हमारी ज़िंदगी से,
जिनकी कभी हमें
सबसे ज्यादा ज़रूरत थी!

(३८)
मौन स्पर्श

मौन को मौन
पढ़ ले जो अगर
तुम मुझको पा लेना
मैं पा जाऊँगी तुझको,
अधरों पर जो तुम मेरे
ठहरे हो अगर
तुम मुस्का देना
मैं मुस्काऊँगी तुझमें,
स्पर्श कोमल मन का
तुम जानते हो अगर
तुम छू लेना हौले से मुझको
मैं सिमट जाऊँगी तुझमें,
बहुत मिले हैं चाहने वाले
तुम जो पढ़ लो मुझको अगर
उलझन मेरी सुलझा देना
मुझको उलझा करके खुद में।

(३९)
प्रेम ईश्वर है!

कहते हैं
प्रेम ईश्वर है!
निश्छल होता है,
स्वभाव से चंचल होता है,
भाव का भूखा होता है,
उसे कामना नहीं किसी की...
उसे लोभ नहीं प्राप्य का...
वासना से परे
उसका सुख होता है
मुस्कुराती हुई आँखों को देखना
वो दो जोड़ी आँखें
जो उसे अति प्रिय हैं,
सच ही
प्रेम ईश्वर है!
वो भी कहाँ मिलता है...

कहते हैं
प्रेम राधा कृष्ण है!
पा लेने की चाहत
या खो देने का दुःख
कम नहीं करता प्रेम को...
पर जिन्होंने समझा ही नहीं
कभी ईश्वर को
वो क्या समझेंगे प्रेम?
उन्हें कृष्ण राधा की
रासलीला याद है,
उन्हें पता नहीं
विरह में प्रेम
और प्रगाढ़ हो जाता है!
मिलन तो भ्रम मात्र है...

कहते हैं
प्रेम प्रकृति की दी अभूल्य धरोहर है!
बहते झरने सा है प्रेम!
तो कभी सौँधी मिट्टी सा है प्रेम!
कभी पंछी का कलरव है!
तो कहीं उन्मुक्त आकाश है प्रेम!

पर जिन्होंने छोड़ा नहीं
धरती को जीने योग्य..
उन्हें क्या पता
क्या होता है प्रेम!
वो बस नोंच लेते हैं
धरती का वो हिस्सा जो उन्हें
आकर्षित करता है अपनी तरफ..
उन्हें धरती की तकलीफ
ज्ञात ही नहीं..
जिस दिन खो देंगे उसे
तब शायद समझ पाये
क्या है प्रेम!

कहते हैं
प्रेम स्त्री है!
जो जन्म देती है
सक प्रेम को
प्रेम के वशीभूत होकर..
सिंचती है उसे बड़े लाड से
चूमती है उसे
अपना वात्सल्य लुटाने के लिए...

सीने से लगाती है
उसका भय भगाने के लिए..
नज़रे उतारती है
उसे बुरी नज़र से बचाने के लिए..
पर एक दिन
आहत होती है उसी प्रेम के द्वारा
हाँ
प्रेम स्त्री है!
और उसकी ही तरह
प्रेम को समझना भी
कहाँ संभव है?

(४०)
अंधविश्वास

कुत्ते का रोना
मुझे अशुभ संकेत लगा
और मैं डरती रही खुद के लिए
अगली सुबह
दरवाज़े पर वो मृत पड़ा था
मैं अब भी
अंधविश्वास में जी रही थी
इससे बुरा संकेत और क्या होगा?
मुझे सचमुच
खुद के लिए डरने की जरूरत है!

मैंने इंटरव्यू में जाते हुए
रोक लिए अपने कदम
क्योंकि बिल्ली ने
रास्ता काट दिया था,
मुझे ये मेरी सफलता के लिए
अशुभ संकेत लगा...
मैंने मोड़ लिए अपने कदम

मैंने पकड़ लिया दूसरा रास्ता
जो ऊँची नीची पगड़ियों से गुज़रता था
मैंने खो दिया अपना नियत समय
मैंने खो दिया अवसर
बिना किसी प्रयत्न के ही
मैं अब भी
अंधविश्वास में जी रही थी
इससे बुरा संकेत और क्या होगा?
मुझे सचमुच
खुद के लिए डरने की जरूरत है!

छुड़े नौकर को
जुकाम हुआ था
पर लिया नहीं उसने कोई अवकाश
वो नियत समय पर पहुँच
करता रहा निरंतर अपना काम
करता रहा
मेरे सफ़र पर जाने की तैयारी
मैंने ज्यों ही सूटकेस उठाया
उसे छीकें आने लगी
मुझे उसका छींकना
बुरा संकेत लगा
और मैं ठहर गई कुछ देर के लिए
पर मेरी ट्रेन अपने नियत समय से
आकर चली गई

मैं अब भी
अंधविश्वास में जी रही थी
इससे बुरा संकेत और क्या होगा?
मुझे सचमुच
खुद के लिए डरने की जरूरत है!

(४१)

प्रेम का आगमन

जब प्रेम का आगमन होता है
चूमना चाहिए फूलों को
चूमना चाहिए बारिश की बूँदों को
वो सीखा देंगे तुम्हें
प्रेम करने का सलीका
दूर रहकर भी....

जब होता है आगमन प्रेम का
मूँद लेनी चाहिए पलकें
समेट लेने चाहिए ख़्वाब
क्योंकि जब खुलती हैं पलकें
और बिखरते हैं ख़्वाब
जीना मुश्किल हो जाता है!

जब होता है प्रेम का आगमन

महसूस करनी चाहिए
खुद की मुस्कान
और रोक लेना चाहिए उन्हें
सदा के लिए अपने होंठों पर
क्योंकि...
ये मुस्कान क्षणिक है!

जब आगमन होता है प्रेम का
हमें शुरू कर देना चाहिए
खुद के लिए जीना
क्योंकि दूसरों के लिए तो
हम तब भी जीते हैं
जब प्रेम हमारे जीवन का
हिस्सा नहीं होता!

(४२)
माँ की याद

अलार्म की आवाज़
भाती नहीं मुझे
कितनी सुखद नींद
होती है उस क्षण
पर छोड़कर आलस
उठ ही जाती हूँ हर रोज़
याद आ जाती है माँ की बात
'जो सोया वो खोया'
माँ हर पल साये सी
मेरे पास होती है!

मुझे पसंद नहीं करेले
फिर भी...
खाने की थाली लगाते हुए
बना लेती हूँ उसके लिए भी

थोड़ी सी जगह,
मुझे याद आ जाती है
माँ की बात!
कि खाना सेहत के लिए खाना चाहिए...
कुछ इस तरह
याद आ ही जाती है माँ
हर निवाले के साथ!

कभी लगा लेती हूँ
आँखों में काजल
तो कभी चाँध लेती हूँ
बिखरे बालों की
माँ को पसंद नहीं थे
बिखरे बाल और सूनी आँखें
माँ को याद करने के
कई तरीके हैं!

कभी आईने के सामने
खड़े होने से कतराती हूँ
वो भी पढ़ लेता है
चेहरा मेरा...
माँ की तरह ही

वो दोनों रुक से हैं!

और रिश्तों के खाते में
अधूरी दास्ताँ दर्ज की गई

(४३)
खूबसूरत रिश्ते

कुछ रिश्ते
जो बेहद खूबसूरत थे
फिर भी
छोड़ दिए गए
बीच सफ़र में ही...
उनकी किस्मत में
खामोशी थी
क्योंकि...
उन्होंने नाप तोलकर
बोलना सीखा नहीं...
जाने वो कब
किस बात पर
नाराज़ हो जाए...
इस डर से
खामोशियाँ बढ़ती गईं

(४४)
अब इंतज़ार नहीं...

आँखों का पानी
सूख गया है
आँखों में काजल
अब ठहरने लगा है
उन्हें...
पता चल गया है अब
आँसू खूबसूरती का
हिस्सा नहीं...

अधरों पर ठहरने लगी है मुस्कान
वो अब...
बेमतलब ही मुस्कुरा उठते हैं
ढूँढ़ते नहीं कोई वज़ह अब
उन्हें पता चल गया है
उदासियों के करीब

सिर्फ तन्हाईयाँ आती है

बालों ने सीख लिया है
खुद ही उलझकर सुलझना
वो अब छेड़ती रहती हैं
हर पल कपोलों को...
गुदगुदाती रहती हैं
कि एक बार फिर
मुस्कुरा उठे ज़िंदगी,
किसी और के आने का
अब उन्हें इंतज़ार नहीं...

(४५)
झूठ के पाँव नहीं होते!

झूठ के
पाँव नहीं होते!
होते हैं पंख...
वो उड़ता है
मदमस्त हवा में,
बहता है
खुली फिज़ा में,
गिरता है...
संभलता है...
फिर भी,
इतराकर चलता है!
अकड़ता है...
बिगड़ता है...
फिर भी,
थोड़ा तो डरता है!

होती जो
सच की आहट
छुप जाता है...
घबरा जाता है...
थोड़ा खुद से ही
शरमा जाता है!
खुद से शर्मिदा होकर
किस अंबर में
वो डोलेगा!
बोलो किससे
अब नज़रें मिलाकर
अपना झूठ
वो बोलेंगा!
वो पंछी से
करे शिकायत,
तू भी तो
उड़ता फिरता है!
फिर मेरी
आज़ादी से
सच क्यों
हरदम जलता है!

पंछी चुप था
बोला बस इतना..
पंछी का
देखा उड़ना,
देखी नहीं
सच्चाई!!
उसके पंख तो
होते हैं!
पर पाँव भी
होते हैं भाई!

(४६)
तिलांजलि

साँसों की
तिलांजलि करने को
मन अधीर जो हो कभी
सुनो..
तुम मेरी साँसें
आप ही में ढूँढ लेना
ढूँढ लेना हृदय में अपने
आकृति जो बनती हो कोई..
ठहर एक क्षण
प्रतिध्वनि सुनना मेरी
में आहत हूँ
टूटने से तेरे,
आह!
मेरी सुन सको जो
जीने की आस

फिर तुम जगाना
और फिर कभी
न टूटने के लिए...
लौट आना जीवन धारा में,
अनुकूल से
लगने लगेंगे...
प्रकृति के रोपे बीज सभी...
और फूटेंगे अंकुर उसमें
उल्लास की नींव लिए
सिंचना उसे
इस बार तुम...
अपने मन अनुराग से,
बोझिल ना होना
किसी भी संताप से,
विचलित जो हो फिर भी
मन कभी किसी द्वेष से...
अपने अंतर्मन में
फिर से भ्रमण
तुम कर आना!!
और फिर से एक बार
जीवन धारा में बह जाना

(४७)
निराशा मेरी अल्हड़ सहेली

निराशा ब्यो जाते हैं
कुछ लोग...
क्षणिक ही सही
पर ब्यो जाते हैं,
बंजर अवनि से
हम स्यो जाते हैं,
मन मरुस्थल
हुआ जाता है,
चश्मा प्यास का
सूख जाता है,
अंतर्मन में
चीखता है कोई...
कानों में रुदन कोई
छोड़ जाता है,
निस्तेज नयन

छोड़ देते हैं..
बुनना कोई स्वप्न,
बोझिल साँसों से
जीते रहते हैं,
हाँ..
प्रकृति है मेरी,
निराशा बुन लेती हूँ
कुछ क्षण के लिए..
पर ये जिया चंचल
ठहरता नहीं वहाँ भी..
फिर से एक बार
सतरंगी स्वप्न में..
डूब जाता है,
और फिर से ये
अल्हड़ हँसी
बिखेर जाता है,
हाय...ये निराशा
अल्हड़ सहेली है मेरी!!

(४८)
मन पथिक

मन व्यथित पथिक सा..
भटका करता है अक्सर,
कोई राह नहीं मिलती है जब
खोजा खुद को ही अक्सर,

धुंधली इक तस्वीर हवा में
बह जाती है सरसर,
टकराकर काँच से यूँ भी
टूट जाती है अक्सर,

टूटे काँच के टुकड़े
चुभते हैं आँखों में,
ये अशक बूँद-बूँद करके
बह जाते हैं अक्सर,

रात की छतरी, कुछ देर के लिए
स्वप्न लोक में ले जाती है,
जहाँ गिरह खुल जाती है कुछ
कुछ बाँधे रखती है अक्सर,

(४९)

संवेदना

मौन और मुखर के
बीच का संवाद
क्या तुम समझते हो?
गर समझते हो
संवेदनाओं को...
समझ सकते हो
क्या कहती हैं ये,
कभी मचलती...
कभी कसमसाती...
गिरती...
सम्भलती...
हर बार नए रूप लिए
कभी उदास...
हताश होकर...
मन के झूले पर झूलती

कहती है...
मैं निश्छल तेरे साथ
जीना चाहती हूँ,
मैं जानती हूँ!!
तुम कब मुझसे
छल करते हो,
और कब प्रेम!!
नितांत अकेली बैठी
अक्सर सोचती हूँ
मौन रहूँ...
या कह दूँ...
जो ये मन कहता है!!
होकर मुखर भी
जो तुम ना समझ सके...
धूमिल मार्ग पर
कहीं अग्रसर ना हो जाऊँ,
जो संवेदना नहीं समझते
तुम मेरी...
मेरा मौन रहना ही
उचित होगा!

(५०)
चाँद हथेली पर

सक रोज़
चाँद हथेली पर लिस
मैं भी थोड़ा इतराऊँगा,
तुम मुझसे मिलने सक रोज़
सुनो... धरा पर आना,
आना सेसे की
क्षितिज पर उस दिन...
शाम का कोना अटका हो,
उस कोने से सिंदूरी सूरज
थोड़ा सा तो झुकता हो,
तुम माथे पर
बिंदी रख लेना...
आँखों में गहरा काजल,
होंठों पर रंग गुलाबी
पैरों में काली पायल,

तुम ऊँचककर
छुना मेरे हाथों को,
मैं हथेली पर
बिठा लूँगा तुमको,
देखना...

भास्कर ऊठकर
नदियों का आँचल थाभेगा,
तेरी बिंदिया की चमक से
वो नील गगन से भागेगा,
मैं उस रोज़ व्योम का राजा
बनकर थोड़ा इतराऊँगा,
तेरे माथे की बिंदी में
मैं भी फिर
गुम हो जाऊँगा,

(५१)
मुझे नहीं पता

मुझे नहीं पता
वो क्यों
भिगो देना चाहता था
अपनी प्रीत में मुझे!
और क्यों??
वो अबोध प्रणय
जिसने बाँधा था
हमदोनों को कभी,
मुझमें..
भीतर कहीं रिसता रहा,
और मैं
मैं जीती रही उसको।

मैं पी लेना चाहती थी
उसके सारे दर्द,

और वो...

मुझपर अपनी खुशियाँ लुटाता रहा,

वो नहीं चाहता था...

इन आँखों से

आँसू का कतरा भी छलके।

मैं रिसती रही हमेशा

तड़पती रही उस दर्द के लिए...

जो उसे सताते थे,

वो हँसता था!!

खिलखिलाता था!!

पर नज़रे चुराता था!!

ओढ़कर खुशियों का चोला

जब झूठी बातें करता था,

वो भीतर रोता था

मुझको भी तो रलाता था।

ये पुरुष क्यूँ औरत को

कमजोर समझता है,

छुपाकर दर्द अपने क्यूँ

हमको दर्द देता है ।

(५२)

चाँद के तले

अपने सपनों को

तोड़ते हुए...

उसके हाथ क्या

दुःखते नहीं??

सजाकर तेरे स्वप्न सलौने

वो इतराती है...

इठलाती है...

लहरों सी बलखाती है...

भूलकर ये...

कि देखे थे

उसने भी सपने,

जिया था उनको

चाँद के तले

हर उजली रातों में,

मंद मुस्कराती थी

नींद पलकों में भरे,
क्या छाले नहीं पड़े?
रौंदते हुए उन्हें पांव तले!
आह...
निर्मम है तू
हत्यारी है...
अपने भावनाओं की,
तुझे प्रेम तो है
पर अपने प्रेम से...

(५३)
जब मैं हसीन था

छात उन दिनों की है
जब मैं भी हसीन था।

आँखों में ख़्वाब थे...
स्वाद नमकीन था,
तीखे से ख़यालों का
असर हुआ संगीन था,
ये छात उन दिनों की है
जब मैं भी हसीन था।

गालों पर झुर्रियां न थी
आँखों से दिखता रंगीन था,
ये चाल अपनी बस में थी
पैरों तले ज़मीन था,
ये छात उन दिनों की है

जब मैं भी हसीन था।

कॉलेज के गेट पर
हँसी ठहाकों का सीन था,
फोटो खींचने के लिए
मोबाइल नहीं...
होता एक मशीन (कैमरा) था,
ये बात उन दिनों की है
जब मैं भी हसीन था।

लेक्चर में सो जाना
रोज का रूटीन था,
मस्ती करने को
होता कैंटीन था,
ये बात उन दिनों की है
जब मैं भी हसीन था।

लव लेटर जो लिखता था
उसमें दिल होता तीन था,
एक उसका, एक मेरा था
एक रहता यतीम था,
ये बात उन दिनों की है

जब मैं भी हसीन था।

रेड सिग्नल पर चलते थे
रुकते, जब होता गीन था,
धूप में निकलने से पहले
लगाता सनक्रीम था
ये बात उन दिनों की है
जब मैं भी हसीन थी।

(५४)
धरती का कोना

सोच ये...

शब्दों की धारा में बह जाती हूँ
आकाश का मीठा स्वर
जब लहरों को धुन बनासगा,
धरती का कोना कहीं तो
मुझसे भी टकरासगा।

आज़ाद परिंदे तो
करते मनमानी हैं,
थोड़ी करते हँसी ठिठोली
थोड़ी करते नादानी हैं,
नियत में कोई खोट नहीं...
निश्चल चंचल प्राणी हैं,
ढूँढ़ ही लेते हैं धरती का कोना
घरौंदों में रात बितानी है।

सक शाम मदमस्त सी
पतंग सी उड़ती जाती है,
किरणों से देखो कैसे
वो नित प्रतिदिन पेंच लड़ाती है,
क्षितिज पर बैठी
करती बयार से बातें...
लुकाछुपी का खेल ये
भानु को सिखाती है,
धरती का एक कोना
भानु को भी चाहता है,
साँझ ढले वो, छोड़कर अम्बर
धरा से मिलने आता है।

मैं भी शब्दों की धारा में
बहती नदी सी जाती हूँ,
लहरों सी इठलाती...
लहरों सी बलखाती हूँ,
टकराकर धरती के कोने से
हौले से मुस्काती हूँ,
अपने मन की व्यथा भी तो
इनसे ही मैं बताती हूँ,

कोना धरती का
सबके हिस्से में है लेकिन..
क्यों छीनता एक दूजे से इंसान
समझ नहीं पाती हूँ।

(५५)

मृगतृष्णा

तू सुलझी-सुलझी बादल जैसी
जब भर जाय...बह जाती हो,
मैं उलझा-उलझा लहरों जैसा
अंतर्मन का हूँ द्वंद प्रिये!

रंग सांवाला बरखा ऋतु जैसा
सौंथी सी खुशबू लिय...
मैं प्यासी धरती सा तुझ बिन
सबका तू अनुराग प्रिये!

चंचल,कोमल,शीतल है तू तो
मृग सी कस्तूरी लिय...
वन-वन भटका करता हूँ मैं तो
तू मृगतृष्णा मेरी प्रिये!

(५६)
अकस्मात् ही...

सुनो!
अविरल सा जब मन बहे
तिमिर
स्वप्निल
रातों में....
और सकांत प्रिय लगे
जब
घनी बरसातों में!
स्वच्छंद तुम उड़ना
पसार कर पंख अपने,
ठहरना,
पर वहाँ नहीं...
जहाँ तुम थक जाओ
तुम रुकना वहाँ
जहाँ अथक मुस्कान हो

विश्राम करना
पर ठहरना नहीं वहाँ भी..
ये मुस्कान
सच्ची सखी नहीं है,
चंद पल का याराना है इसका..
बह चलना
रुक बार फिर वहीं
अविरल मन जब
तिमिर स्वप्निल रातों में
स्वच्छंद सा लगे
अकस्मात् ही..
रश्मि चूमगी अम्बर को
और मन
भाव विभोर होकर
देखेगा जब
लालिमा..
अपने प्रिय (भानु) की!

(५७)
पापा आपके बिना

मणिकर्णिका की ज्वाला अब भी
सीने में धधकती है!

पापा आपके बिना
ये आँखें भी ना सिसकती हैं!

अपनी पीड़ा किससे कहूँ
कौन समझा अब पासगा!
उँगली पकड़कर कौन मुझे
किसी दुविधा से पार लगासगा!

ऊठना किसी से भूल गई अब
खुद से ही ऊठी रहती हूँ!
बिन बात के ही खुद से अब
मैं तो झगड़ा करती हूँ!

दिल दिमाग में होड़ लगी है

कभी संभल... बिखर कभी जाती हूँ!
पापा आपके बिना
जी भी तो नहीं पाती हूँ!

बंद पलकों में चेहरा आपका
ना चाहो तो भी आ जाता है!
सर पर हाथ फेर गया कोई
ऐसा मन भरमाता है!

रोकर अपनी पीड़ा
कम नहीं करना चाहती हूँ!
हर पल घुटना चाहती हूँ
हर पल मरना चाहती हूँ!

अंत समय में एक बार ही
बातें आपसे जो कर पाती!
उद्वेलित मन को शायद
शांत मैं तब कर पाती!

पता नहीं क्या कहना था
पता नहीं क्या सुनना था!
आपके हाथों में एक बार

अपनी पुस्तक मुझको रखना था!

नहीं पूर्ण हुई आशाएं

बन सकी आपका अभिमान!

कोरों पर ठहरे हैं आँसू

अब चाह नहीं मिले कोई सम्मान!

(५८)

क्यों हमेशा संग होते नहीं पापा

रचाकर हाथों में मेहँदी

कभी बैठ जाते थे

यूँही बेफ़िक्र...

कि हमें पता था

कि प्यार भरा निवाला

हमें खिलाने को

हमेशा होते थे पापा।

यूँही...

लुका छुपी का खेल

खेला करते थे...

जब कभी ऑफिस से

लौटकर आते थे पापा,

उन्हें पता होता था

हमारी छुपने की जगह...

फिर भी
ढूँढ़ते थे हमें
कभी रजाई के नीचे
तो कभी
बक्सों के पीछे
कुछ ऐसे लाल दिखाते थे पापा..

चोटी के बीच
खोसकर गुलाब के फूल
उन्हें गुलदस्ता
बना देते थे पापा..
तो कभी
मुझी में कैद कर चींटे को
उन्हें इलायची
बताते थे पापा..

रसोई तक कदम
धकेलने से नहीं जाते थे,
वो चले जाते थे आप ही
कि बनाना चाहती थी
कुछ उसके लिए
जिसने कभी की नहीं कोई फर्माइश,

जिसे फर्क ही नहीं पड़ता था
खाने के स्वाद से,
वो सिर्फ़ स्नेह भरा हाथ
रखना जानते थे सर पर,
उनकी बेटी ने कुछ भी बनाया हो
उसमें कभी उन्होंने ढूँढ़ी ही नहीं..
हालाँकि...

कई बार खुद खाने पर
पता चलता था,
नमक ही नहीं डाला मैंने!
बड़ा निश्चल होता है ना
जो प्यार लुटाते हैं पापा..

बड़े अजीब होते हैं पापा!
वो जताते नहीं
कभी प्यार अपना..
सारी जरूरतें, सारी फर्माइश
पूरी करते हैं,
पर सामने अक्सर
मना कर देते हैं पापा,
माँ पूरी करती है सारी जरूरतें

इसी सोच में बड़े हो जाते हैं हम!
पर जब बड़े हो जाते हैं
और पूरी करनी होती है
खुद से अपनी जरूरतें...
तब शायद समझ आते हैं पापा!

विदाई करते समय बेटी की
छुप के रो लेते हैं,
पर गले से लगाकर
क्यों सिसकते नहीं पापा?
खुद को मजबूत दिखाते हैं
पर अंदर से
कितने कोमल होते हैं पापा!
क्यों जाना पड़ता है दूर
क्यों हमेशा साथ रहते नहीं पापा!

(५९)

माँ

माँ चाहती है
बेटी की सूरत उस जैसी हो,
वो चहक उठती है
उसमें अपना बचपन देखकर,
पर जो बात हो जीवन की...
वो चाहती नहीं
उसकी बेटी वो जीवन जीये,
उसे पलटकर देखने पर
सिर्फ अपनी पीड़ा याद रहती है,
जो बात हो उसकी बेटी की...
उसे उसका सुख
न्यूनतम दिखाई देता है,
वो चाहती है उसके लिए
सक मखमली जीवन...

(६०)
पितृपक्ष

वो जो कौवे
मुझे बिल्कुल पसंद नहीं थे
जिनका काँव-काँव करना
चुभता था कानों को...
आज अपनी
छत की मुंडेर पर,
बैठा जो देखा मैंने
जाने क्यों बतियाने लगी?
आज से
पितरों के दिन शुरू हैं,
शायद...
शायद ढूँढ़ रही मैं भी
उस कौवे में किसी अपने को,
बहुत देर तक करता रहा
वो काँव-काँव...

और
और मुझे आज
बिल्कुल भी चुभ नहीं रहा था
उनका यूँ शोर मचाना,
मुझे फिक्र हो रही थी
कहीं उसका कंठ
सूख तो नहीं गया होगा...
कहीं उसे भूख तो
नहीं लगी होगी...
मैं ले आई
कुल्हड़ में पानी
और रख दिया उसके समीप,
पर उसने
छुआ भी नहीं उसे...
जैसे कह रहा हो
गुड़िया!
आज भी मैं
नहीं पी सकता
तुम्हारे घर का पानी,
मैं आज भी
सिर्फ तुम्हें देखने आया हूँ

गुड़िया!
आँसू से नहीं
मुस्कराहट से मुझे विदा करना...

(६१)

माँ को याद करने के तरीके

अलार्म की आवाज़
भाती नहीं मुझे
कितनी सुखद नींद
होती है उस क्षण
पर छोड़कर आलस
उठ ही जाती हूँ हर रोज़
याद आ जाती है माँ की बात
'जो सोया वो खोया'
माँ हर पल साये सी
मेरे पास होती है!

मुझे पसंद नहीं करेले
फिर भी...
खाने की थाली लगाते हुए
बना लेती हूँ उसके लिए भी
थोड़ी सी जगह,

मुझे याद आ जाती है

माँ की बात!

कि खाना सेहत के लिए खाना चाहिए...

कुछ इस तरह

याद आ ही जाती है माँ

हर निवाले के साथ!

कभी लगा लेती हूँ

आँखों में काजल

तो कभी बाँध लेती हूँ

बिखरे बालों को

माँ को पसंद नहीं थे

बिखरे बाल और सूनी आँखें

माँ को याद करने के

कई तरीके हैं!

कभी आईने के सामने

खड़े होने से कतराती हूँ

वो भी पढ़ लेता है

चेहरा मेरा...

माँ की तरह ही

वो दोनों एक से हैं!

(६२)

माँ चाहती है!

माँ!

छुरी स्मृतियों की रेखाएं भी

पढ़ लेती है माये की लकीरों से,

माँ ने... मुस्कुराहट के पीछे

छिपे दर्द को पहचानना

किसी से सीखा नहीं...

वो अपने बीते पलों को

उधेड़ लेती है समय के अनुरूप

उसे पता है...

अभी कितने सुख

मेरे हिस्से में बाकी हैं!

उसे पता है...

कितने दुःखों का दरिया

अभी मुझे पार करना है!

वो बस...

अपने स्नेह भरे चुंबन
और वात्सल्य से भरे बाहुपाश से
उन्हें कम कर देना चाहती है!

(६३)

फाउन्टेन पेन

पापा लिखने न देते थे
बॉल पेन से कभी...
उन्हें फाउन्टेन पेन
पसंद थी हमेशा से,
वो ब्लू ब्लैक कलर
और चेलपार्क की महक
आज भी याद है,
फाउन्टेन पेन लिखना
उनके आज भी
साथ होने जैसा है!

(६४)
तारीख

उस तारीख,
उस महीने को भी
अपने संग ले जाना था
पापा आपको अपने संग
सबकुछ ले जाना था।

(६५)
साया

वो पूछते हैं
कैसे लिख लेते हो प्रेम
वो जानते नहीं
मुझमें
मेरे पिता का साया है।

(६६)

मन

मन उन्मादी
शिशु जैसा...
भला बुरा न जाने है,
हठ करता
न डरता किसी से
अपनी करना जाने है,

मन कोमल
बरखा ऋतु जैसा
जब चाहे बरसाए नीर
घुमड़-घुमड़कर
गरज बरसकर
अपनी वो बतार पीर!

(६७)

स्वामित्व

मैंने कहा था तुमसे
तुमसे विलग
मेरा कोई अस्तित्व नहीं...
पर जो आत्मसम्मान मेरा
चूर करना चाहा है तुमने
आज तुम्हारा स्वामित्व
मुझपर नहीं...

(६८)

तुमसे मिलने आऊँगी

सोचती थी
कभी यूँ भी...
छोड़कर
नाराज़गी अपनी,
तुमसे मिलने
आऊँगी कभी,
पर... ये कभी
आता कहाँ हैं!
और जब तय की
मिलने की तारिख...
दुनिया ने पहरे लगा दिए!
इस महामारी ने
अगर जीने दिया
अगर बची रहीं साँसे
तुमसे मिलने आऊँगी....

(६९)

मेरी कल्पना

दूर...
आकाश में उभरती तस्वीर
और याद तेरी,
क्या तुम हो वहाँ?
या हो मेरी कल्पना में..
आकाश में उलझे
बादलों को देखकर...
यही लगता है
कि तुम...
हाँ तुम ही हो..
जो छेड़ रहे मुझको,
और मुस्कुरा रहे
मेरे ऊठ जाने पर...

अवकाश के दिन हैं,
ये खुद से
साक्षात्कार के दिन हैं,

(७०)
अवकाश के दिन

फूटने से पहले कोंपल के
सब उजाड़ सा होता है,
शायद हमारे भीतर भी
नए विचारों की
कोंपल फूटने वाली है,
रहकर घरों में
खुद से जो
साक्षात्कार होगा हमारा,
शायद हम समझ पाएँगे
प्रकृति की पीड़ा..
शायद कर सकेंगे
हम उसकी रक्षा करना..
शायद फिर न आए
कोई ऐसी महामारी..
ये अवसाद के नहीं!

(७१)
फाँस

पीड़ा वाले दिनों में
नहीं उतरता निवाला गले से,
कि सहसा न भरी रोटियां
गले में फाँस सी चुभती हैं!

(७२)
छोटा सा डाँट

तेरे दिल में छुपी बातें
जब रिसने लगती हैं,
मैं बह जाती हूँ संग तेरे...
क्योंकि
तेरे दिल के नीचे का
सक छोटा सा डाँट हूँ मैं ।

(७३)
मोहपाश

हम...
मोहपाश में बँधे
साधारण से इंसान हैं,
हमें डर लगता है
अपनों को खोने से...
यद्यपि
हमें ज्ञात है
मौत आमंत्रण है
मोक्ष का..

(७४)
अमृत वर्षा

घर के कोने में
सिसकती स्त्री का रोना
जिस रोज पुरुष सुन लेगा
और जिस रोज
सुन लेगी स्त्री
पुरुषों के अंतर्मन की पीड़ा
उस रोज...
आकाश से अमृत बरसेगा
उस रोज ज़रूरी नहीं
शरद पूर्णिमा हो
पर ईश्वर उस दिन
राधा कृष्ण के शेष में
उन दोनों में समाहित होंगे!

(७५)
वर्षा ऋतु

स्त्रियों ने बाँध रखा है
वर्षा ऋतु को
अपने आँचल से
जब उनके सख का बाँध
टूट जाता है
उस रोज...
मेघ बरस पड़ते हैं आकाश से
वर्षा ऋतु यूँही
प्रिय बनी नहीं स्त्रियों की...

(७६)
ये लड़कियाँ

मूँदकर पलकों को
रो भी लेती हैं
मुस्कुरा भी लेती हैं
लड़कियाँ रात का
इंतज़ार नहीं करती।

किसी शाम जो
सक ख़वाब पूरा हो जाय
झूम उठती हैं
पर वो देखती नहीं ख़वाब
कभी खुद के लिये...
वो ख़वाब
जिसमें वो खुद नहीं होती
उसके लिये जीना
ये लड़कियाँ ही जानती हैं

(७७)
प्रेम का पर्याय

कालांतर में
जब छोड़ देगी दुनिया
लिखना प्रेम विषय पर,
असल में उस दिन ही
प्रेम का पर्याय
समझ सकेगा ये समाज!

(७८)
प्रेम अधिकार नहीं माँगता

मैंने लिखा नहीं कभी
कोई प्रेम पत्र!
पर लिखी
जाने कितनी ही कवितारं,
महसूस किया उन लम्हों को भी
जो मैंने जीया ही नहीं...
कवितारं जब रचती हैं
रचता है प्रेम मेरे हृदय में भी,
उन कविताओं ने मुझे
प्रेम का अर्थ समझाया है
समझाया है
कि प्रेम अधिकार नहीं माँगता
प्रेम में बस जीया जाता है
हर पल मूँदकर पलकें
बस महसूस किया जाता है

उसे...

जो ना होकर भी

करीब होता है हर पल

(७९)

मूक पीड़ा

बच्चे की मूक पीड़ा

समझने वाली स्त्री

जब समझ नहीं पाती

घर के किसी

बुजुर्ग व्यक्ति का स्वर भी

ईश्वर छीन लेता है

उसके बच्चे की श्रवण शक्ति

जब वो उम्र के ऊँचे

पायदान पर कदम रख रही हो...

शायद समय का चक्र

इसीलिए गोल चलता है!

(८०)

कविताएँ हताश नहीं होती!

कविताएँ
उदास तो हो सकती हैं
पर
हताश नहीं होती...
उन्होंने
जीवन देना सीखा है,
जीवन लेना
उनकी संस्कृति का
हिस्सा नहीं...

(८१)

मेरा बचपन

उसने टखनों के बल ऊँचककर
अंकित कर दी थी एक मोहर
मेरे उलझे सुलझे से माथे पर
जो समंदर से भी ज्यादा लहरें
समेटे रहता है हृदय...
उस रोज़
गंगा सा शांत हो गया मेरा मन
उन अनगढ़ हथेलियों ने
थामकर मुझको
लौटा दिया था मेरा बचपन!

(८२)
अंत

उसने...
लिखना पढ़ना
छोड़ दिया है
वो...
अंदर ही अंदर,
मर रही है शायद
बस...
देखती रहती है
शून्य में हरपल,
खुद से अनजान
उसे पता भी नहीं
उसके दिल ने
कब...
धड़कना छोड़ दिया,
अब किसी की

मुस्कराहट से
झंकृत नहीं होता मन
किसी के आँसू से
अब..
पसीजता नहीं मन,
मन को
बारिशों का मौसम
अब लुभाता नहीं..
उसके जीवन से संगीत
लुप्त होने को है
शायद...
उसका अंत होने को है
शायद उसे..
नया जन्म लेना होगा!
शाय उसे..
सक बार फिर
शिशु हो जाना होगा!

(८३)

हस्ताक्षर

मेरी कविताओं पर
हस्ताक्षर कर देना
तुम अपने...
वो मेरी होकर भी
तेरी ही है!
वो सिर्फ
तुझसे
प्रेम करना जानती है!

(८४)

हम दोनों के मध्य

युद्ध से पहले
हम दोनों के मध्य
प्रेम नहीं था
पर बदल सकते थे हम
अपने मध्य की नफ़रतें
पर युद्ध के बाद
कुछ भी तो नहीं बचा
ना प्रेम के लिस तुम
ना नफ़रत के लिस मैं!

(८५)

प्यार करना छोड़ दिया है

ज़मीं पर पाँव रखूँ तो
उभरते हैं पैरों में छाले
ये धरती जल रही है
उसे प्यार की तलाश है
हमने आसमाँ की चाह में
ज़मीं का खयाल रखना
छोड़ दिया है
हमने अपनों से प्यार करना
छोड़ दिया है!

(८६)

प्रेम अंतहीन है

प्रेम से जुड़ा कोई भी वाक्य
अतिशयोक्ति नहीं होता
बल्कि
प्रेम अंतहीन होता है
जिसकी यात्रा
कहाँ से शुरू होती है
ये तो ज्ञात होता है
पर अंत सम्भव नहीं
शायद
मोहिनी ने जब
अमृतपान कराया था
प्रेम ने जी भरकर
उसका घूंट लिया था...

(८७)
कामना के बीज

ईश्वर ने गढ़ा
स्त्री और पुरुष को
और फिर
डाल दिया उनमें
कामना का बीज
पुरुष ने इच्छा की
प्रेम की...
और स्त्री ने चाहा
पुरुष की कामना
पूर्ण हो,
ईश्वर भी सोचता होगा
यदि
स्त्री ने प्रथम की होती
जो याचना
वो क्या होती...

(८८)
कविताएँ

दम तोड़ने लगी हैं
वो कविताएँ
जो बाँध दी गई हैं
अवसरों के साँचे में,
कविताओं को
आज़ादी से
उड़ने की आदत है,
उन्होंने बँधकर रहना
सीखा नहीं अभी...
जिस रोज़
उन्होंने ये सीख लिया
उस रोज़ कवि मर जायेंगे...

(८९)

काश!

अपनी ठोड़ी
अपनी हथेलियों पर रख
अक्सर सोचती हूँ
कुछ नई
तो कुछ पुरानी बातें
अजीब है ये मन
बावरा सबकुछ सोचता है
बस वर्तमान छोड़कर
काश!
मन रेल के इंजन सा होता
धुआं उड़ाता हुआ
एक सीटी के साथ
छोड़ देता अपने पीछे
पिछला सबकुछ
और जीता सिर्फ वर्तमान को...

(९०)

मासूम कविता

मेरे हिस्से में मैंने
चुनी है सिर्फ वो कविताएं
जो तुमसे मिलने के पूर्व
रची थी मैंने..
बाकी कविताओं ने खुद ही
मुझको नहीं
तुमको चुना है
मेरी कविताओं ने
अपनी मासूमियत नहीं खोई
वो डरती नहीं संसार से
देखो ना..
वो कितनी ईमानदार है
तुम्हारे प्रति...

(९१)

बुढ़ापा

बुढ़ापा
खीर तो बनाना चाहता है
पर...
चूल्हे में आग जलाकर
पतीले को रखना भूल जाता है
तो कभी
पतीला रखकर आग जलाना
साँसें जब थमने लगती हैं
और उम्र थमती नहीं
हमें झोंक देनी चाहिये
उदासियाँ चूल्हे में...
मुझे लगता है
इससे स्वादिष्ट खीर
किसी आँच में नहीं पकेगी

(९२)

क्षितिज

दिन रात के कौतूहल में
मैंने हमेशा
शाम की अवहेलना की

तब तक...
जब तक मुझे प्रेम नहीं था
अब ये शाम
सबसे खूबसूरत होती है

ये क्षितिज
एक अद्भुत प्रेम का
परिचायक है

(९३)
प्रार्थना

मैंने
कई बार की प्रार्थना
पर ईश्वर से
माँगा नहीं कभी कुछ
मुझे लगता है
वो जानता है...
हमारे लिये क्या सही है
और क्या ग़लत

(९४)
कहना नहीं आया

मुझे कभी
कहना नहीं आया
मन के भावों को
जब कभी चाहा
कहना कुछ भी
रची सक नई कविता
या फिर गुनगुनाया
वो गीत
जो जानता है मुझे
मुझसे भी ज्यादा..

(९५)

याचना

सुनी नहीं गई याचना
पत्तों की...
उसने की थी कामना
बस थोड़े से दुलार की
पर...
शाखों से गिरने के बाद
रौंद दिया गया उन्हें
क़दमों के तले
उन्हें उनके जन्मदाता ने भी
वापस गोद में न लिया..
वो चाहते नहीं अगले जन्म में
फिर से पत्ता होना
उन्हें फूल बनने की आस है!

(९६)

ये चारिश नहीं जानती...

ये चारिश जानती नहीं
मन के भीगने का मौसम
और ये मन करता है
चारिश की आस
जिस रोज़ मन के भीगने पर
बरसेंगे मेघ
उस रोज़ मैं समझूँगी
सृष्टि में अब भी
जीवित है प्रेम..

(९७)
अंतर्द्धद

मन रचता नहीं आजकल
कोई नई कविता,
मन भीग जाना चाहता है,
वो धो देना चाहता है
अपनी उदासियाँ...
वो थक गया है
दूसरों की परवाह करते-करते,
मन...
लड़ता है रोज़ खुद से ही...
इस अंतर्द्धद उलझा
वो ठहर जाता है,
बस उधेड़ता है कुछ ख़्वाब
जो बस ख़्वाब ही थे,
मन को ख़्वाबों के लिये
नया स्वेटर तो बुनना है

पर नये ऊन के रंग-रूप
उसके अनुरूप नहीं है,
मन को रंगना होगा
नये रंग चुनने के लिये...
मन को भीगना होगा
नई कविताओं के लिये...

(९७)

दिल और दिमाग

दिल और दिमाग
कभी साथ नहीं देते
एक दूसरे का...
जिस दिन दोनों
तर्क-वितर्क से परे
होंगे साथ-साथ
उस रोज़
होंटों पर मुस्कान
और आँखों में नमी
झूठे नहीं होंगे...

(९८)

तमन्ना

मैं भूल गई
तमन्नाओं के फूल खिलाना
मैं जीने लगी हूँ उसमें
जिससे मुझे प्रेम है
और इस तरह मुझमें
मैं ही बची नहीं...
मैं अब तुम हो चुकी हूँ

(९९)
प्रसिद्धि

मैंने देखा है
सिरहाने रखी किताब को
अक्सर रोते हुए
वो हमें इतनी प्रिय होती है
कि हम उसे कभी रखते नहीं
शेल्फ पर सजाकर
ये प्रसिद्धि ना
छीन लेती है अपनों का साथ

(१००)
इंसान बनना होगा

कविताएँ कम पढ़ी जाती हैं
क्योंकि...
उनको जीना पड़ता है
और उनको जीने के लिए
हमें मशीन नहीं...
इंसान बनना होगा

(१०१)

मन को मिली ना ठौर

मन फिरता रहा
बनकर बंजारा
मन को मिली ना ठौर
मन उन्मादी किसी बाल सा
सुन सके ना शब्द कठोर

(१०२)

तुम जीवित हो

मुझसे पूछा था
कभी किसी ने
क्या चूमा है कभी
किसी ने तेरी आँखों को,
क्या फेरी हैं कभी
उँगलियाँ तेरे बालों में,
अगर ऐसा है
तो यकीन मानो
'तुम जीवित हो'
तुम्हारी आँखों का पानी
सूखा नहीं अब तक
शायद स्पर्श बचाये रखता है
कोमल मन को
कठोर होने से..

(१०३)

प्रीत का साँचा

प्रेम सोख लेता है
अपनी गंध
मात्र स्पर्श से...
उसे ढल जाने की चाह है
प्रीत के साँचे में,
किन्तु
उस साँचे में
जिसका
कोई आकार नहीं होता!